

Chapter तीन

समस्त अवतारों के स्रोत : कृष्ण

सूत उवाच

जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ।

सम्भूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥ १ ॥

शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत ने कहा; जगृहे—स्वीकार किया; पौरुषम्—पुरुष अवतार रूप में पूर्णांश; रूपम्—रूप; भगवान्—भगवान्; महत्-आदिभिः—भौतिक जगत के अवयवों सहित; सम्भूतम्—इस तरह उत्पन्न; षोडश-कलम्—सोलह मुख्य सिद्धान्त; आदौ—प्रारम्भ में; लोक—ब्रह्माण्ड; सिसृक्षया—उत्पन्न करने के विचार से।

सूतजी ने कहा : सृष्टि के प्रारम्भ में, भगवान् ने सर्वप्रथम विराट पुरुष अवतार के रूप में अपना विस्तार किया और भौतिक सृजन के लिए सारी सामग्री प्रकट की। इस प्रकार सर्वप्रथम भौतिक क्रिया के सोलह तत्त्व उत्पन्न हुए। यह सब भौतिक ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने के लिए किया गया।

तात्पर्य : भगवद्गीता का मत है कि भगवान् कृष्ण अपने पूर्णांशों के विस्तार से इन भौतिक ब्रह्माण्डों का पालन करते हैं। अतः यह पुरुष रूप उसी सिद्धान्त की पुष्टि है। आदि भगवान् वासुदेव या कृष्ण भगवान् जो राजा वसुदेव या राजा नन्द के पुत्र के रूप में विख्यात हैं, समस्त ऐश्वर्यों, शक्तियों, यश, सौंदर्य, ज्ञान तथा वैराग्य से परिपूर्ण हैं। उनके ऐश्वर्यों का एक अंश निराकार ब्रह्म के रूप में प्रकट होता है, तो एक अंश परमात्मा रूप में। उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण का यह पुरुष रूप भगवान् का मूल परमात्मा स्वरूप है। भौतिक सृष्टि में तीन पुरुष रूप होते हैं और यह रूप, जो कारणोदकशायी विष्णु कहलाता है, तीनों में से प्रथम है। अन्य रूप हैं, गर्भोदकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु जिनके बारे में हम क्रमशः जानेंगे। इन कारणोदकशायी विष्णु के रोमकूपों से असंख्य ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है और प्रत्येक ब्रह्माण्ड में भगवान् गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में प्रवेश करते हैं।

भगवद्गीता में यह भी उल्लेख है कि भौतिक जगत निश्चित अवधि के लिए उत्पन्न किया जाता है और फिर विनष्ट कर दिया जाता है। यह सृजन तथा संहार बद्धजीवों या नित्य बद्धजीवों

के कारण भगवान् की इच्छा से किया जाता है। नित्य बद्धजीवों में वैयक्तिक भाव या अहंकार होता है, जो उन्हें इन्द्रिय-भोग का आदेश देता है, क्योंकि स्वाभाविक रूप से उन्हें ये भोग नहीं मिल सकते। भगवान् ही एकमात्र भोक्ता हैं और शेष सब भोग्य हैं। जीव पराधीन भोक्ता हैं। लेकिन नित्य बद्धजीव इस स्वाभाविक अवस्था को भूल जाने के कारण ही भोग की दृढ़ इच्छा करता है। बद्धजीवों को भौतिक जगत में पदार्थ को भोगने का अवसर दिया जाता है, किन्तु इसके साथ ही साथ उन्हें अपना वास्तविक स्वरूप समझने का अवसर भी प्रदान किया जाता है। जो जीव इतने भाग्यशाली होते हैं कि भौतिक संसार में अनेकानेक जन्मों के बाद इस सत्य को ग्रहण करके वासुदेव के चरणकमलों की शरण में जाते हैं, वे नित्यमुक्त जीवों के साथ भगवान् के धाम में प्रवेश करने के अधिकारी होते हैं। इसके पश्चात् ऐसे भाग्यशाली जीवों को समय समय पर सृजित इस भौतिक सृष्टि में आने की आवश्यकता नहीं पड़ती। किन्तु जो जीव स्वाभाविक सत्य को ग्रहण नहीं कर पाते, वे इस सृष्टि के प्रलय के समय *महत्-तत्त्व* में पुनः मिल जाते हैं। जब पुनः सृष्टि होती है तो यह *महत्-तत्त्व* पुनः उन्मुक्त होता है। इस *महत्-तत्त्व* में भौतिक प्राकट्य की सारी सामग्री विद्यमान होती है, जिनमें बद्धजीव भी सम्मिलित रहते हैं। मूलतः यह *महत्-तत्त्व* सोलह अंशों में विभक्त किया जाता है। ये हैं—पाँच स्थूल भौतिक तत्त्व तथा ग्यारह कर्मेन्द्रियाँ। यह स्वच्छ आकाश में बादल के समान होता है। आध्यात्मिक आकाश में ब्रह्म का तेज चतुर्दिक् फैला रहता है और समग्र मंडल दिव्य प्रकाश से जाज्वल्यमान रहता है। इस विस्तृत असीम आध्यात्मिक आकाश के किसी कोने में *महत्-तत्त्व* एकत्र होता है और आकाश का जितना भाग *महत्-तत्त्व* से ढका रहता है वह भौतिक आकाश कहलाता है। *महत्-तत्त्व* का यह भाग सम्पूर्ण आध्यात्मिक आकाश का नगण्य अंश होता है। इस *महत्-तत्त्व* के भीतर असंख्य ब्रह्माण्ड रहते हैं। ये सारे ब्रह्माण्ड कारणोदकशायी विष्णु या महाविष्णु के द्वारा भौतिक आकाश पर केवल दृष्टिपात करने से उत्पन्न होते हैं।

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ।

नाभिहृदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसके; अम्भसि—जल में; शयानस्य—लेटे हुए; योग-निद्राम्—ध्यान में सोये हुए; वितन्वतः—विस्तार करते हुए; नाभि—नाभि रूपी; हृद—सरोवर के; अम्बुजात्—कमल से; आसीत्—प्रकट हुआ; ब्रह्मा—जीवों के पितामह; विश्व—ब्रह्माण्ड का; सृजाम्—शिल्पी; पतिः—स्वामी।

पुरुष के एक अंश ब्रह्माण्ड के जल के भीतर लेटते हैं, उनके शरीर के नाभि-सरोवर से एक कमलनाल अंकुरित होता है और इस नाल के ऊपर खिले कमल-पुष्प से ब्रह्माण्ड के समस्त शिल्पियों के स्वामी ब्रह्मा प्रकट होते हैं।

तात्पर्य : प्रथम पुरुष कारणोदकशायी विष्णु हैं। उनकी त्वचा के छिद्रों से असंख्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं और यह पुरुष इन प्रत्येक ब्रह्माण्डों में गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में प्रवेश कर जाते हैं। वे आधे ब्रह्माण्ड में लेटे हुए हैं, जो उनके शरीर के जल से भर जाता है। इन गर्भोदकशायी विष्णु की नाभि से एक कमलनाल निकलता है, जो ब्रह्मा का जन्मस्थल है। ब्रह्माजी समस्त जीवों के पिता हैं और ब्रह्माण्ड की सुघड़ अभिकल्पना तथा संचालन में लगे समस्त देवता रूप शिल्पियों के स्वामी हैं। इस कमलनाल के भीतर ग्रहमंडल के चौदह लोक हैं, जिनमें से पृथ्वीग्रह तथा वैसे ही अन्य ग्रह मध्य में स्थित हैं। इसके ऊपर की ओर उत्तम ग्रहमंडल हैं और सबसे ऊपरी लोक ब्रह्मलोक या सत्यलोक कहलाता है। पृथ्वी-ग्रहमंडल से नीचे की ओर सात अधोलोक हैं, जिनमें असुर तथा अन्य ऐसे ही भौतिकतावादी जीव निवास करते हैं।

गर्भोदकशायी विष्णु से क्षीरोदकशायी विष्णु का विस्तार होता है, जो समस्त जीवों के सामूहिक परमात्मा हैं। वे हरि कहलाते हैं और उन्हीं से ब्रह्माण्ड के सारे अवतारों का विस्तार होता है।

अतएव निष्कर्ष यह निकला कि पुरुष-अवतार तीन रूपों में प्रकट होते हैं—पहले कारणोदकशायी हैं, जो महत्-तत्त्व में समग्र भौतिक तत्त्वों को उत्पन्न करते हैं, दूसरे गर्भोदकशायी हैं, जो प्रत्येक ब्रह्माण्ड में प्रवेश करते हैं और तीसरे क्षीरोदकशायी विष्णु हैं, जो प्रत्येक भौतिक पदार्थ—चाहे वह जैव हो या अजैव—सबके परमात्मा हैं। जो व्यक्ति भगवान् के इन पूर्ण रूपों को जानता है, वह ईश्वर को ठीक से समझता है। इस तरह का ज्ञाता जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि की

भौतिक स्थिति से मुक्त हो जाता है, जैसा कि *भगवद्गीता* में भी इसकी पुष्टि हुई है। इस श्लोक में महाविष्णु के विषय में सारांश दिया गया है। महाविष्णु अपनी मुक्त इच्छा से आध्यात्मिक आकाश के कुछ भाग में लेटे रहते हैं। इस तरह वे कारण सागर में लेटे हुए प्रकृति पर दृष्टि फेरते हैं, जिससे तुरन्त *महत्-तत्त्व* की सृष्टि होती है। इस प्रकार से भगवान् की शक्ति से विद्युत्-उन्मेषित होकर प्रकृति अनेक ब्रह्माण्डों को जन्म देती है, जिस प्रकार समय आने पर वृक्ष में असंख्य फल लग जाते हैं। वृक्ष का बीज बोने वाला किसान होता है और समय पाकर वृक्ष या लता में अनेक फल प्रकट होते हैं। कोई भी घटना किसी कारण के बिना नहीं घटती। इसीलिए कारण-सागर *कारणार्णव* कहलाता है। हमें मूर्खतावश सृष्टि के नास्तिकतावादी सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करना चाहिए। *भगवद्गीता* में नास्तिकों का वर्णन हुआ है। नास्तिक सृष्टा पर विश्वास नहीं करता, किन्तु वह सृष्टि का कोई अच्छा सिद्धान्त भी नहीं दे सकता। भौतिक प्रकृति में पुरुष के बिना सृजन करने की शक्ति नहीं है, जिस प्रकार कि प्रकृति अर्थात् स्त्री, पुरुष के बिना अर्थात् नर से सम्बन्ध स्थापित किये बिना शिशु उत्पन्न नहीं कर सकती। पुरुष गर्भाधान करता है और प्रकृति प्रसव करती है। जिस प्रकार बकरे के गले में लगी मांसल थैलियों से दूध की आशा नहीं की जा सकती, यद्यपि वे स्तन जैसी लगती हैं, उसी प्रकार हमें भौतिक तत्त्वों से किसी प्रकार की सृजनात्मक शक्ति की आशा नहीं करनी चाहिए। हमें पुरुष की शक्ति में विश्वास करना चाहिए, जो प्रकृति का गर्भाधान करने वाले हैं। चूँकि भगवान् की इच्छा ध्यानमग्न होकर लेटने की थी, अतः भौतिक शक्ति ने तुरन्त असंख्य ब्रह्माण्ड उत्पन्न कर दिये और इनमें से प्रत्येक में भगवान् लेट गये। इस प्रकार भगवान् की इच्छा से तुरन्त ही सारे ग्रह तथा विभिन्न सामग्री उत्पन्न हो गई। भगवान् में अनन्त शक्तियाँ हैं, अतः वे इच्छानुसार अपनी योजना पूरी करते हुए कार्य कर सकते हैं, यद्यपि वे स्वयं कुछ नहीं करते। कोई न तो उनके तुल्य है, न उनसे बढ़कर। यही वेदों का निर्णय है।

यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः ।

तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसका; अवयव—शारीरिक विस्तार; संस्थानैः—में स्थित; कल्पितः—कल्पित किया गया; लोक—निवासियों के ग्रह; विस्तरः—विभिन्न; तत् वै—लेकिन वह है; भगवतः—भगवान् का; रूपम्—रूप; विशुद्धम्—शुद्ध; सत्त्वम्—अस्तित्व; ऊजितम्—सर्वश्रेष्ठ।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि समस्त ब्रह्माण्ड के ग्रहमंडल पुरुष के विराट शरीर में स्थित हैं, किन्तु उन्हें सर्जित भौतिक अवयवों से कोई सरोकार नहीं होता। उनका शरीर नित्य आध्यात्मिक अस्तित्वमय है जिसकी कोई तुलना नहीं है।

तात्पर्य : परम सत्य के विराट्-रूप या विश्व-रूप की धारणा विशेष रूप से नवदीक्षितों के लिए है, जो भगवान् के दिव्य रूप के विषय में सोच सकने में अक्षम होते हैं। उनके लिए रूप का अर्थ इस भौतिक जगत से सम्बद्ध कोई वस्तु है, अतएव प्रारम्भ में भगवान् की शक्ति के विस्तार पर ध्यान एकाग्र करने के लिए ब्रह्म की विरोधी कल्पना आवश्यक होती है। जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, भगवान् महत्-तत्त्व के रूप में अपनी शक्ति का विस्तार करते हैं, जिसमें सभी भौतिक अवयव सम्मिलित रहते हैं। एक तरह से भगवान् की शक्ति का विस्तार तथा स्वयं भगवान् एक हैं, किन्तु साथ ही साथ महत्-तत्त्व भगवान् से भिन्न भी है। फलस्वरूप, भगवान् की शक्ति तथा भगवान् एक ही साथ भिन्न तथा अभिन्न हैं। इस तरह विराट्-रूप की अवधारणा, विशेष रूप से निर्विशेषवादियों के लिए, भगवान् के नित्य रूप से अभिन्न है। भगवान् का यह नित्य रूप महत्-तत्त्व की सृष्टि के पहले से विद्यमान रहता है और यहाँ पर इस बात पर बल दिया गया है कि भगवान् का नित्य रूप प्रकृति के गुणों से परम आध्यात्मिक या दिव्य है। यही दिव्य रूप भगवान् की अन्तरंगा शक्ति से प्रकट होता है और अनेक अवतारों के रूप में उनका स्वरूप वैसे ही दिव्य गुण वाला बना रहता है, उसमें महत्-तत्त्व का किंचित स्पर्श तक नहीं होता।

पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा
सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ।
सहस्रमूर्धश्रवणाक्षिनासिकं

सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत् ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

पश्यन्ति—देखते हैं; अदः—पुरुष का; रूपम्—रूप; अदभ्र—पूर्ण; चक्षुषा—आँखों से; सहस्र-पाद—हजारों पाँव; ऊरु—जंघाएँ; भुज-आनन—हाथ तथा मुख; अद्भुतम्—आश्चर्यजनक; सहस्र—हजारों; मूर्ध—शिर; श्रवण—कान; अक्षि—आँखें; नासिकम्—नाक; सहस्र—हजारों; मौलि—मालाएँ; अम्बर—वस्त्र; कुण्डल—कर्णाभूषण; उल्लसत्—चमकते हुए।

भक्तगण अपने विमल (पूर्ण) नेत्रों से उस पुरुष के दिव्य रूप का दर्शन करते हैं जिसके हजारों-हजार पाँव, जंघाएँ, भुजाएँ तथा मुख हैं और सबके सब अद्वितीय हैं। उस शरीर में हजारों सिर, आँखें, कान तथा नाक होते हैं। वे हजारों मुकुटों तथा चमकते कुण्डलों से अलंकृत हैं और मालाओं से सजाये गये हैं।

तात्पर्य : हम अपनी वर्तमान भौतिक इन्द्रियों से दिव्य भगवान् को रंचमात्र भी नहीं देख पाते। हमारी वर्तमान इन्द्रियों को भक्तिमय सेवा की प्रक्रिया द्वारा ठीक करने की आवश्यकता है, तभी भगवान् स्वयं हमें दर्शन देते हैं। *भगवद्गीता* में पुष्टि की गई है कि शुद्ध भक्तिमय सेवा द्वारा ही दिव्य रूप भगवान् के दर्शन किये जा सकते हैं। इस तरह वेदों में भी पुष्टि हुई है कि केवल भक्ति ही मनुष्य को भगवान् की ओर ले जा सकती है और केवल भक्ति से भगवान् प्रकट होते हैं। *ब्रह्म-संहिता* में भी कहा गया है कि भगवान् सदैव उन भक्तों को दिखते हैं, जिनकी आँखों में भक्ति रूपी अंजन लगा रहता है। अतएव हमें भगवान् के दिव्य रूप की जानकारी ऐसे व्यक्तियों से प्राप्त करनी होती है, जिन्होंने भक्ति के अंजन से रंजित आँखों से उनका दर्शन किया है। इस भौतिक जगत में भी हम वस्तुओं को सदा अपनी आँखों से नहीं देखते; कभी-कभी हम उन लोगों के अनुभव से देखते हैं जिन्होंने उन्हें पहले से देखा है या कुछ काम किया है। यदि दुन्यवी वस्तुओं के अनुभव किये जाने की यह विधि है, तो फिर दिव्य विषयों में यह पूरी तरह लागू होती है। अतएव केवल धैर्य तथा दृढ़ता से ही परम सत्य सम्बन्धी दिव्य विषय तथा उनके विविध रूपों के सम्बन्ध में अनुभूति प्राप्त की जा सकती है। नवदीक्षितों के लिए वे स्वरूपहीन हैं, किन्तु दक्ष सेवक के लिए वे दिव्य रूप से युक्त होते हैं।

एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ।

यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

एतत्—यह (रूप) ; नाना—अनेक; अवताराणाम्—अवतारों का; निधानम्—स्रोत; बीजम्—बीज; अव्ययम्—अविनाशी; यस्य—जिसका; अंश—पूर्ण अंश; अंशेन—भिन्नांश से; सृज्यन्ते—उत्पन्न होते हैं; देव—देवता; तिर्यक्—पशु; नर-आदयः—मनुष्य इत्यादि ।

यह रूप (पुरुष का द्वितीय प्राकट्य) ब्रह्माण्ड के भीतर नाना अवतारों का स्रोत तथा अविनाशी बीज है। इसी रूप के कणों तथा अंशों से देवता, मनुष्य इत्यादि विभिन्न जीव उत्पन्न होते हैं।

तात्पर्य : महत्-तत्त्व में असंख्य ब्रह्माण्डों की सृष्टि कर लेने के बाद, यह पुरुष इन ब्रह्माण्डों में से प्रत्येक में, द्वितीय पुरुष—गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में प्रविष्ट हुए। वहाँ पर जब उन्होंने देखा कि ब्रह्माण्ड भर में अंधकार ही अंधकार तथा अवकाश है, विश्राम के लिए कहीं कोई आश्रय नहीं है, तब उन्होंने अपने पसीने के जल से आधे ब्रह्माण्ड को भर दिया और स्वयं उसी जल में लेट गए। यह जल गर्भोदक कहलाता है। तब उनकी नाभि से कमलनाल अंकुरित हुई और उस फूल की पंखुड़ियों पर ब्रह्माण्ड के प्रमुख शिल्पी ब्रह्मा का जन्म हुआ। ब्रह्मा ब्रह्माण्ड के शिल्पी हुए और भगवान् ने विष्णु रूप में इस ब्रह्माण्ड के पालन का भार अपने ऊपर ले लिया। ब्रह्मा की उत्पत्ति प्रकृति के रजोगुण से हुई और विष्णु सत्त्वगुण के स्वामी बने। विष्णु समस्त गुणों से परे होने के कारण भौतिक प्रभावों से सदा अलग रहते हैं। इसकी व्याख्या पहले की जा चुकी है। ब्रह्मा से रुद्र (शिव) उत्पन्न हुए, जो तमोगुण के स्वामी हैं। वे भगवान् की इच्छा से सम्पूर्ण सृष्टि का संहार करते हैं। अतएव ये तीनों—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव गर्भोदकशायी विष्णु के ही अवतार हैं। ब्रह्मा से दक्ष, मरीचि, मनु आदि अनेक देवता अवतरित हुए जिन्होंने ब्रह्माण्ड में जीवों का जनन किया। वेदों में इन गर्भोदकशायी विष्णु की स्तुति *गर्भस्तुति* के स्तोत्रों के रूप में की जाती है, जिनका प्रारम्भ हजारों शिरो आदि वाले भगवान् के वर्णन से होता है। गर्भोदकशायी विष्णु ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं और यद्यपि वे इस ब्रह्माण्ड के भीतर शयन करते प्रतीत होते हैं, किन्तु वे सदैव दिव्य हैं। इसकी भी व्याख्या की जा चुकी है। विष्णु, जो कि गर्भोदकशायी विष्णु के पूर्ण

अंश हैं, विश्वभर के जीवों के परमात्मा हैं और वे ब्रह्माण्ड के पालनकर्ता या क्षीरोदकशायी विष्णु कहलाते हैं। इस प्रकार मूल पुरुष के तीन रूप जाने जाते हैं। इस ब्रह्माण्ड के भीतर जितने भी अवतार हैं, वे इसी क्षीरोदकशायी विष्णु से उद्भूत होते हैं।

विभिन्न युगों में भिन्न-भिन्न असंख्य अवतार होते रहते हैं, किन्तु इनमें से कुछ अत्यन्त प्रमुख हैं—यथा मत्स्य, कूर्म, वराह, राम, नृसिंह, वामन तथा अनेक दूसरे अवतार। ये अवतार *लीला अवतार* कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त गुणावतार भी होते हैं—यथा ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव (या रुद्र) जो प्रकृति के विभिन्न गुणों के लिए उत्तरदायी हैं।

भगवान् विष्णु परमेश्वर से अभिन्न हैं। शिवजी, परमेश्वर तथा जीवों की बीच की स्थिति में हैं और ब्रह्मा सदैव *जीव-तत्त्व* होते हैं। जो सर्वोच्च पुण्यात्मा जीव या भगवद्भक्त है, भगवान् द्वारा उसको सृष्टि करने की शक्ति प्रदान की जाती है और वह ब्रह्मा कहलाता है। उनकी शक्ति सूर्य जैसी है, जो मणि-माणिक्यों द्वारा प्रतिबिम्बित होती रहती है। जब ब्रह्मा का स्थान ग्रहण करने के लायक कोई जीव नहीं होता, तो भगवान् स्वयं ब्रह्मा बनकर इस कार्यभार को ग्रहण करते हैं।

शिवजी कोई सामान्य जीव नहीं हैं। वे भगवान् के पूर्णांश हैं, लेकिन भौतिक प्रकृति के प्रत्यक्ष संसर्ग में रहने के कारण उन्हें विष्णु जैसा दिव्य स्थान प्राप्त नहीं है। उनमें दूध तथा दही जैसा अन्तर है। यों तो दही दूध ही है, फिर भी वह दूध के स्थान पर उपयोग में नहीं लाया जा सकता।

इसके बाद मनुओं के अवतार आते हैं। ब्रह्मा के जीवन के एक दिन (हमारे सौर वर्षों की गणना के अनुसार $४३,००,००० \times १,०००$ वर्ष) में चौदह मनु होते हैं। इस प्रकार ब्रह्मा के एक मास में ४२० मनु तथा ब्रह्मा के एक वर्ष में ५,०४० मनु होते हैं। ब्रह्माकी आयु १०० वर्ष की है, अतः ब्रह्मा के जीवन में $५,०४० \times १००$ या ५,०४,००० मनु होते हैं। ब्रह्माण्डों की संख्या अनगिनत है और इनमें से प्रत्येक में एक-एक ब्रह्मा होते हैं और ये सब पुरुष के श्वास लेने और छोड़ने जितने समय में उत्पन्न तथा विनष्ट हो जाते हैं। अतएव कल्पना की जा सकती है कि पुरुष के एक श्वास काल में कितने लाखों मनु होते होंगे।

इस ब्रह्माण्ड के प्रमुख मनु इस प्रकार हैं—स्वयंभुव मनु के रूप में यज्ञ, स्वारोचिष मनु के रूप में विभु, उत्तम मनु के रूप में सत्यसेन, तामस मनु के रूप में हरि, रैवत मनु के रूप में वैकुण्ठ, चाक्षुष मनु के रूप में अजित, वैवस्वत मनु के रूप में वामन (वर्तमान युग वैवस्वत मनु के अधीन है), सावर्णि मनु के रूप में सार्वभौम, दक्ष-सावर्णि मनु के रूप में ऋषभ, ब्रह्म-सावर्णि मनु के रूप में विश्वक्सेन, धर्म-सावर्णि मनु के रूप में धर्मसेतु, रुद्र-सावर्णि मनु के रूप में सुधामा, देव-सावर्णि मनु के रूप में योगेश्वर और इन्द्र-सावर्णि मनु के रूप में वृहद्भानु। ये चौदह मनुओं के एक समुच्चय के नाम हैं जो ४,३०,००,००,००० वर्षों का काल पूरा करते हैं।

फिर युगावतार भी होते हैं। युगों के नाम हैं—सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग। प्रत्येक युग के अवतारों का रंग भिन्न होता है। ये रंग हैं श्वेत, लाल, काला तथा पीला। द्वापरयुग में भगवान् कृष्ण काले रंग में प्रकट हुए और कलियुग में चैतन्य महाप्रभु पीले रंग में प्रकट हुए।

इस प्रकार शास्त्रों में भगवान् के समस्त अवतारों का उल्लेख मिलता है। किसी भी धूर्त के लिए अवतार बनने की गुंजाईश नहीं है, क्योंकि अवतार का उल्लेख शास्त्रों में रहता है। कोई भी अवतार अपने को ईश्वर का अवतार घोषित नहीं करता, अपितु ऋषिगण शास्त्रों में उल्लिखित लक्षणों के आधार पर उन्हें स्वीकार करते हैं। शास्त्रों में अवतार के लक्षणों तथा उनके द्वारा सम्पन्न होने वाले विशेष सन्देश (कार्य) का उल्लेख रहता है।

प्रत्यक्ष अवतारों के अतिरिक्त असंख्य 'शक्त्यावेश' अवतार होते हैं। इनका भी प्रामाणिक शास्त्रों में उल्लेख रहता है। ऐसे अवतारों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से शक्ति प्राप्त रहती है। जब उन्हें प्रत्यक्ष शक्ति मिली है, तो वे *अवतार* कहलाते हैं, किन्तु जब उन्हें अप्रत्यक्ष शक्ति मिलती है, तब वे *विभूतियाँ* कहलाते हैं। प्रत्यक्ष 'शक्त्यावेश' अवतारों में कुमारगण, नारद, पृथु, शेष, अनन्त आदि हैं। जहाँ तक विभूतियों का सम्बन्ध है, इनका स्पष्ट वर्णन *भगवद्गीता* के विभूतियोग अध्याय में हुआ है। ऐसे समस्त प्रकार के अवतारों के स्रोत गर्भोदकशायी विष्णु हैं।

स एव प्रथमं देवः कौमारं सर्गमाश्रितः ।

चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने; एव—ही; प्रथमम्—पहला; देवः—परमेश्वर; कौमारम्—कुमारगण (अविवाहित); सर्गम्—सृष्टि; आश्रितः—अधीन; चचार—सम्पन्न किया; दुश्चरम्—करना अत्यन्त कठिन, दुष्कर; ब्रह्मा—ब्रह्मा की कोटि में; ब्रह्मचर्यम्—ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त करने की तपस्या में; अखण्डितम्—अविच्छिन्न।

सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम ब्रह्मा के चार अविवाहित पुत्र (कुमारगण) थे, जिन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए परम सत्य के साक्षात्कार हेतु कठोर तपस्या की।

तात्पर्य : इस भौतिक जगत की पहले उत्पत्ति, फिर पालन और तब एक निश्चित कालावधि के बाद संहार होता रहता है। अतएव जीवों के पिता ब्रह्मा की विशिष्ट कोटियों के अनुसार सृष्टियों के भिन्न-भिन्न नाम होते हैं। जैसाकि ऊपर कहा गया है, कुमारगणों की उत्पत्ति भौतिक जगत की कौमार-सृष्टि में हुई। उन्होंने हमें ब्रह्म-साक्षात्कार की विधि सिखाने के लिए स्वयं ब्रह्मचारी रहकर कठिन व्रत का पालन किया। ये सारे कुमार 'शक्त्यावेश' अवतार हैं। ये कठिन व्रत पालन करने के पूर्व ही योग्य ब्राह्मण बन चुके थे। इसी उदाहरण से यह सुझाव प्राप्त होता है कि मनुष्य को केवल जन्म से नहीं अपितु गुण से ब्राह्मण की योग्यताएँ प्राप्त कर लेनी चाहिए। तभी वह ब्रह्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया में अपने को लगाए।

द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतं महीम् ।

उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

द्वितीयम्—दूसरा; तु—लेकिन; भवाय—कल्याण के लिए; अस्य—इस पृथ्वी के; रसातल—निम्नतम भागमें; गताम्—गयी हुई; महीम्—पृथ्वी को; उद्धरिष्यन्—उठा कर; उपादत्त—स्थापित किया; यज्ञेशः—स्वामी या परम भोक्ता; सौकरम्—सूकर का; वपुः—अवतार।

समस्त यज्ञों के परम भोक्ता ने सूकर का अवतार (द्वितीय अवतार) स्वीकार किया और पृथ्वी के कल्याण हेतु उसे ब्रह्माण्ड के रसातल क्षेत्र से ऊपर उठाया।

तात्पर्य : यहाँ संकेत यह है कि भगवान् के प्रत्येक अवतार के लिए उनके द्वारा सम्पन्न होने वाले विशेष कार्य का भी उल्लेख रहता है। बिना कार्य-विशेष के कोई अवतार नहीं हो सकता और ऐसा कार्य सदा ही अद्वितीय होता है। ऐसे कार्यों का किसी जीव द्वारा सम्पन्न किया जाना

असम्भव होता है। शूकर का अवतार पृथ्वी को गन्दे पदार्थ के रसातल भाग से बाहर निकालना था। गन्दे स्थान से कोई चीज उठाना शूकर का कार्य है और सर्व-शक्तिमान भगवान् ने यह आश्चर्य असुरों को कर दिखाया, जिन्होंने पृथ्वी को ऐसे गंदे स्थान में छिपा दिया था। भगवान् के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। यद्यपि उन्होंने शूकर की भूमिका निभाई तो भी वे सदैव दिव्य स्थिति में रहते हुए भक्तों के द्वारा पूजित होते हैं।

तृतीयमृषिसर्गं वै देवर्षित्वमुपेत्य सः ।

तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तृतीयम्—तीसरा; ऋषि-सर्गम्—ऋषिसर्ग; वै—निश्चय ही; देवर्षित्वम्—देवताओं में ऋषि का अवतार; उपेत्य—स्वीकार करके; सः—उन्होंने; तन्त्रम्—वेदों का भाष्य; सात्वतम्—विशेष रूप से भक्ति के लिए; आचष्ट—संग्रह किया; नैष्कर्म्यम्—निष्काम; कर्मणाम्—कर्म का; यतः—जिससे।

ऋषियों के सर्ग में, भगवान् ने देवर्षि नारद के रूप में, जो देवताओं में महर्षि हैं, तीसरा शक्त्यावेश अवतार ग्रहण किया। उन्होंने उन वेदों का भाष्य संकलित किया जिनमें भक्ति मिलती है और जो निष्काम कर्म की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

तात्पर्य : भगवान् के शक्त्यावेश अवतार महर्षि नारद सम्पूर्ण जगत में भक्तिमय सेवा का प्रचार करते हैं। ब्रह्माण्ड में सर्वत्र विभिन्न लोकों में तथा समस्त योनियों के सारे बड़े-बड़े भगवद्भक्त उनके शिष्य हैं। श्रीमद्भागवत के संकलनकर्ता श्रील व्यासदेव भी उनके शिष्यों में से एक हैं। नारद-पञ्चरात्र, जो भगवद्भक्ति विषयक वेदों का भाष्य है, उन्हीं के द्वारा रचित है। यह नारद-पञ्चरात्र कर्मियों को कर्म-बन्धन से मुक्ति दिलाने की शिक्षा देता है। बद्धजीव अधिकांश सकाम कर्म के प्रति आसक्त होते हैं, क्योंकि वे अपने श्रम द्वारा जीवन का आनन्द भोगना चाहते हैं। यह सारा ब्रह्माण्ड समस्त योनियों के सकाम कर्मियों से भरा पड़ा है। सभी प्रकार की आर्थिक विकास-योजनाएँ इन सकाम कर्मों में सम्मिलित हैं। किन्तु प्रकृति का नियम यह है कि प्रत्येक क्रिया की परिणामकारी प्रतिक्रिया होती है और कर्म करने वाला अच्छे या बुरे कर्मफल से बँधा होता है। अच्छे कर्म का फल तदनुरूप भौतिक सम्पन्नता है, जबकि बुरे कर्म का फल तदनुरूप

भौतिक कष्ट होता है। फिर भी भौतिक दशाएँ चाहे वे तथाकथित सुख हों या दुख हों, अन्ततः दुख का ही कारण बनते हैं। मूर्ख भौतिकतावादियों को यह पता ही नहीं होता कि मुक्त अवस्था में शाश्वत सुख कैसे प्राप्त करना चाहिए। श्री नारद इन मूर्ख सकाम कर्मियों को बताते हैं कि किस तरह वास्तविक सुख प्राप्त करना चाहिए। वे संसार के रुग्ण मनुष्यों को निर्देश देते हैं कि किस प्रकार उनके वर्तमान पेशे से उनका आध्यात्मिक उत्थान हो सकता है। वैद्य दूध की बनी वस्तु खाने से अपच से पीड़ित रोगी को दूध से ही बना दही खाने का उपचार बताता है। अतः रोग का कारण तथा उसका उपचार एक ही हो सकता है, किन्तु उपचार करने वाले को नारद के समान ही कुशल वैद्य होना चाहिए। *भगवद्गीता* का भी यही उपदेश है कि अपने श्रम के फल से भगवान् की सेवा करनी चाहिए। इससे 'नैष्कर्म्य' या मुक्ति का पथ सुलभ हो सकेगा।

तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ।

भूत्वात्मोपशमोपेतमकरोदुश्चरं तपः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तुर्ये—चौथी बार; धर्म—कला—धर्मराज की पत्नी से; सर्गे—उत्पन्न; नर—नारायण—नर तथा नारायण; ऋषी—ऋषि; भूत्वा—होकर; आत्म-उपशम—इन्द्रिय निग्रह द्वारा; उपेतम्—प्राप्ति के लिए; अकरोत्—किया; दुश्चरम्—अत्यन्त कठिन; तपः—तपस्या।

चौथे अवतार में भगवान् राजा धर्म की पत्नी के जुड़वाँ पुत्र नर तथा नारायण बने। फिर उन्होंने इन्द्रियों को वश में करने के लिए कठिन तथा अनुकरणीय तपस्या की।

तात्पर्य : राजा ऋषभ ने अपने पुत्रों को उपदेश दिया था कि भगवान् का साक्षात्कार करने के लिए तपस्या ही मनुष्य का एकमात्र कर्तव्य (धर्म) है, अतएव हमें शिक्षा देने के लिए ही भगवान् ने आदर्श प्रस्तुत करते हुए स्वयं ऐसा किया। भगवान् भुलकड़ जीवों पर अत्यन्त दयालु रहते हैं। अतः वे स्वयं आते हैं और अपने पीछे आवश्यक आदेश छोड़ जाते हैं। वे बद्धजीवों को भगवद्धाम वापस बुलाने के लिए अपने उत्तम पुत्रों को भी प्रतिनिधि बनाकर भेजते हैं। हाल ही में, अभी सबों की स्मृति में ही, भगवान् चैतन्य भी ऐसे ही कार्य के लिए, इस लौह उद्योग के युग

में पतित आत्माओं पर विशेष कृपा करने के लिए प्रकट हुए थे। नारायण अवतार की पूजा आज भी हिमालय पर्वत स्थित बदरीनारायण में की जाती है।

पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ।

प्रोवाचासुरये साङ्ख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

पञ्चमः—पाँचवाँ; कपिलः—कपिल; नाम—नामक; सिद्धेशः—सिद्धों में श्रेष्ठ; काल—समय द्वारा; विप्लुतम्—नष्ट; प्रोवाच—कहा; आसुरये—आसुरि नामक ब्राह्मण से; साङ्ख्यम्—सांख्यशास्त्र, तत्त्वज्ञान; तत्त्व-ग्राम—सृष्टिकारी तत्त्वों का समूह; विनिर्णयम्—भाष्य।

भगवान् कपिल नामक पाँचवाँ अवतार सिद्धों में सर्वोपरि है। उन्होंने आसुरि ब्राह्मण को सृष्टिकारी तत्त्वों तथा सांख्य शास्त्र का भाष्य बताया, क्योंकि कालक्रम से यह ज्ञान वि-नष्ट हो चुका था।

तात्पर्य : सृष्टिकारी तत्त्वों की कुल संख्या चौबीस है। सांख्य दर्शन में इनमें से प्रत्येक तत्त्व की विशद व्याख्या की गई है। सांख्य दर्शन को यूरोपीय विद्वानों द्वारा सामान्य रूप से तत्त्वदर्शन कहा जाता है। सांख्य का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है, “जो भौतिक तत्त्वों के विश्लेषण द्वारा अच्छी तरह से व्याख्या करे।” भगवान् कपिल ने इसे सर्वप्रथम किया, जिन्हें यहाँ पर पाँचवाँ अवतार कहा गया है।

षष्ठमत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया ।

आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

षष्ठम्—छठवाँ; अत्रेः—अत्रि का; अपत्यत्वम्—पुत्रत्व; वृतः—माँगने पर; प्राप्तः—प्राप्त किया गया; अनसूयया—अनसूया द्वारा; आन्वीक्षिकीम्—अध्यात्म के विषय पर; अलर्काय—अलर्क को; प्रह्लाद-आदिभ्यः—प्रह्लाद तथा अन्यो को; ऊचिवान्—बताया।

पुरुष के छठे अवतार अत्रि मुनि के पुत्र थे। वे अनसूया की प्रार्थना पर उनके गर्भ से उत्पन्न हुए थे। उन्होंने अलर्क, प्रह्लाद तथा अन्यो (यदु, हैहय आदि) को अध्यात्म के विषय में उपदेश दिया।

तात्पर्य : भगवान् ऋषि अत्रि तथा अनसूया के पुत्र, दत्तात्रेय के रूप में अवतरित हुए। ब्रह्माण्ड पुराण में पतिव्रता पत्नी के प्रसंग में, भगवान् द्वारा दत्तात्रेय के रूप में अवतार लेने की कथा का वर्णन हुआ है। उसमें कहा गया है कि ऋषि अत्रि की पत्नी अनसूया ने ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के समक्ष प्रार्थना की, “हे प्रभो! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझसे वर माँगने को कहते हैं, तो मेरी प्रार्थना है कि आप तीनों मिलकर मेरे पुत्र बनें।” उन्होंने यह प्रार्थना स्वीकार की और भगवान् ने दत्तात्रेय के रूप में आत्म-दर्शन की स्थापना की तथा अलर्क, प्रह्लाद, यदु, हैहय आदि को विशेष रूप से इसका उपदेश दिया।

ततः सप्तम आकृत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ।

स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायम्भुवान्तरम् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; सप्तमे—सातवाँ; आकृत्याम्—आकृति के गर्भ से; रुचेः—प्रजापति रुचि के द्वारा; यज्ञः—यज्ञ रूप में भगवान् का अवतार; अभ्यजायत—अवतरित हुए; सः—वे; याम-आद्यैः—यम इत्यादि से; सुर-गणैः—देवताओं के द्वारा; अपात्—शासन किया; स्वायम्भुव-अन्तरम्—स्वाम्भुव मनु का काल परिवर्तन (मन्वन्तर)।

सातवें अवतार प्रजापति रुचि तथा उनकी पत्नी आकृति के पुत्र यज्ञ थे। उन्होंने स्वायम्भुव मनु के बदलने पर शासन सँभाला और अपने पुत्र यम जैसे देवताओं की सहायता प्राप्त की।

तात्पर्य : भौतिक जगत की विधि-व्यवस्था बनाये रखने के लिए, देवताओं द्वारा ग्रहण किये जाने वाले प्रशासकीय पद, अत्यन्त उन्नत पुण्यशाली जीवों को प्रदान किये जाते हैं। जब ऐसे पुण्यात्माओं का अभाव होता है, तो भगवान् स्वयं ब्रह्मा, प्रजापति, इन्द्र आदि के रूप में अवतरित होकर शासन भार सँभालते हैं। स्वायंभुव मनु (आधुनिक युग वैवस्वत मनु का है) के काल में कोई ऐसा उपयुक्त जीव न था, जो इन्द्रलोक के राजा इन्द्र का पद ग्रहण कर सके। उस समय भगवान् स्वयं इन्द्र बन गये। यम आदि अपने पुत्रों तथा देवताओं की सहायता से भगवान् यज्ञ ने संसार का शासन सँभाला।

अष्टमे मेरुदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ।

दर्शयन् वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

अष्टमे—आठवाँ अवतार; मेरुदेव्याम् तु—की पत्नी मेरुदेवी के गर्भ से; नाभे:—राजा नाभि; जातः—जन्म लिया;
उरुक्रमः—सर्वथा शक्तिमान भगवान्; दर्शयन्—दिखाया; वर्त्म—रास्ता; धीराणाम्—पूर्ण लोगों का; सर्व—सभी;
आश्रम—जीवन के चारों आश्रमों द्वारा; नमस्कृतम्—समादरित, वंदनीय।

आठवाँ अवतार राजा ऋषभ के रूप में हुआ। वे राजा नाभि तथा उनकी पत्नी मेरुदेवी के पुत्र थे। इस अवतार में भगवान् ने पूर्णता का मार्ग दिखलाया जिसका अनुगमन उन लोगों द्वारा किया जाता है, जिन्होंने अपनी इन्द्रियों को पूर्ण रूप से संयमित कर लिया है और जो सभी वर्णाश्रमों के लोगों द्वारा वन्दनीय हैं।

तात्पर्य : मानव समाज स्वाभाविक रूप से जीवन के आश्रमों तथा वर्णों के अनुसार आठ वर्णों में विभाजित है—चार वृत्तिपरक तथा चार सांस्कृतिक उत्थान से सम्बद्ध विभाग। बुद्धिजीवी वर्ग, शासक वर्ग, उत्पादक वर्ग और श्रमजीवी वर्ग—ये चार वृत्तिपरक वर्ग हैं। विद्यार्थी जीवन, गृहस्थ जीवन, वानप्रस्थ जीवन एवं संन्यासी जीवन—ये आध्यात्मिक साक्षात्कार के पथ पर सांस्कृतिक उत्थान के चार सोपान हैं। इनमें से संन्यास आश्रम सर्वोच्च माना जाता है और संन्यासी समस्त वर्णों एवं आश्रमों का वैधानिक गुरु होता है। संन्यास आश्रम में भी सिद्धावस्था के लिए चार अवस्थाएँ होती हैं—कुटीचक, बहूदक, परिव्राजकाचार्य तथा परमहंस। परमहंस अवस्था सिद्धि की चरमावस्था है। सभी इस आश्रम का आदर करते हैं। राजा नाभि तथा मेरुदेवी के पुत्र महाराज ऋषभ भगवान् के अवतार थे। उन्होंने अपने पुत्रों को तपस्या द्वारा सिद्धि मार्ग का पालन करने का उपदेश दिया, क्योंकि तपस्या से जीवन पवित्र बनता है और मनुष्य को आध्यात्मिक सुख का लाभ होता है, जो दिव्य है और निरन्तर बढ़ने वाला है। प्रत्येक जीव सुख की खोज में रहता है, किन्तु कोई यह नहीं जानता कि शाश्वत एवं असीम सुख कहाँ उपलब्ध होगा। मूर्ख लोग वास्तविक सुख के स्थान पर भौतिक इन्द्रिय-सुख की खोज करते हैं, किन्तु ऐसे मूर्ख लोग यह भूल जाते हैं कि इस प्रकार का अस्थायी तथाकथित इन्द्रिय-सुख तो कूकर-सूकर भी भोगते हैं। कोई भी पशु, पक्षी या जन्तु इस इन्द्रिय-सुख से वंचित नहीं है। प्रत्येक योनि में, जिसमें मनुष्य योनि भी सम्मिलित है, ऐसा सुख प्रचुरता से उपलब्ध होता है। किन्तु मनुष्य जीवन ऐसे सस्ते

सुख के निमित्त नहीं मिला है। मनुष्य जीवन तो आत्म-साक्षात्कार द्वारा शाश्वत तथा असीम सुख प्राप्त करने के लिए मिला है। यह आत्म-साक्षात्कार तपस्या अर्थात् स्वेच्छा से कष्ट सहकर तथा भौतिक सुख से दूर रहकर ही प्राप्त किया जा सकता है। जो लोग भौतिक आनन्द से अपने को पृथक् रखने में पटु हैं, वे धीर अर्थात् इन्द्रियों द्वारा विचलित न होने वाले व्यक्ति कहलाते हैं। केवल ऐसे ही धीर व्यक्ति संन्यास आश्रम ग्रहण कर सकते हैं और क्रमशः परमहंस पद को प्राप्त कर सकते हैं, जिसकी पूजा समाज का हर व्यक्ति करता है। राजा ऋषभ ने इस सन्देश का प्रचार किया और अन्तिम समय वे समस्त शारीरिक आवश्यकताओं से विलग हो गये, जो दुर्लभ अवस्था है जिसका अनुकरण मूर्ख नहीं कर पाते, लेकिन सभी लोग इसकी पूजा करते हैं।

ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ।

दुग्धेमामोषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

ऋषिभिः—मुनियों द्वारा; याचितः—माँगे जाने पर; भेजे—स्वीकार किया; नवमम्—नवाँ; पार्थिवम्—पृथ्वी के शासक; वपुः—शरीर; दुग्ध—दुहते हुए; इमाम्—ये सब; ओषधीः—पृथ्वी की उपजें; विप्राः—हे ब्राह्मणों; तेन—के द्वारा; अयम्—यह; सः—वह; उशत्तमः—अत्यन्त आकर्षक।

हे ब्राह्मणों, मुनियों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर, भगवान् ने नवें अवतार में राजा (पृथु) का शरीर स्वीकार किया जिन्होंने विविध उपजें प्राप्त करने के लिए पृथ्वी को जोता। फलस्वरूप पृथ्वी अत्यन्त सुन्दर तथा आकर्षक बन गई।

तात्पर्य : राजा पृथु के उत्पन्न होने के पूर्व, उनके पापी पिता के कुशासन के कारण, अत्यन्त अशान्ति छाई थी। बुद्धिमान व्यक्तियों (अर्थात् मुनियों तथा ब्राह्मणों) ने भगवान् से न केवल अवतरित होने के लिए प्रार्थना की, अपितु उन्होंने इस राजा को सिंहासन से उतार भी दिया। राजा का कर्तव्य है कि वह पवित्र हो और अपनी प्रजा के सर्वांगीण कल्याण का ध्यान रखे। राजा जब भी अपने कर्तव्य-पालन में कुछ असावधानी बरते, तो बुद्धिमान व्यक्तियों को चाहिए कि उसे सिंहासन से उतार दें। किन्तु ये बुद्धिमान व्यक्ति खुद सिंहासन पर नहीं बैठते, क्योंकि उनके जिम्मे जनकल्याण के और भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य रहते हैं। अतः राजसिंहासन पर न बैठकर,

उन्होंने भगवान् से अवतार लेने की प्रार्थना की और भगवान् महाराज पृथु के रूप में प्रकट हुए। असली बुद्धिमान व्यक्ति या योग्य ब्राह्मण कभी भी राजनैतिक पदों की चाह नहीं करते। महाराज पृथु ने पृथ्वी से अनेक उत्पाद खोज निकाले। ऐसा राजा प्राप्त करके, न केवल प्रजा प्रसन्न हुई, अपितु पृथ्वी का सारा दृश्य भी सुन्दर तथा आकर्षक हो गया।

रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसम्प्लवे ।

नाव्यारोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

रूपम्—रूप; सः—उसने; जगृहे—स्वीकार किया; मात्स्यम्—मछली का; चाक्षुष—चाक्षुष; उदधि—जल; सम्प्लवे—बाढ़, प्रलय; नावि—नाव में; आरोप्य—रख कर; मही—पृथ्वी; मय्याम्—डूबा हुआ; अपात्—रक्षा की; वैवस्वतम्—वैवस्वत; मनुम्—मनुष्य के पिता, मनु को।

जब चाक्षुष मनु के युग के बाद पूर्ण जलप्रलय हुआ और सारा जगत जल में डूब गया था, तब भगवान् मछली (मत्स्य) के रूप में प्रकट हुए और वैवस्वत मनु को नाव में रखकर उनकी रक्षा की।

तात्पर्य : भागवत के मूल भाष्यकार श्रीपाद श्रीधर स्वामी के मतानुसार प्रत्येक मनु के बदलने पर सदैव प्रलय नहीं होता। फिर भी चाक्षुष मनु के कार्यकाल के पश्चात् यह प्रलय सत्यव्रत को अद्भुत लीला दिखाने के उद्देश्य से किया गया। लेकिन श्रील जीव गोस्वामी ने प्रामाणिक शास्त्रों (विष्णु धर्मोत्तर, मार्कण्डेय पुराण, हरिवंश आदि) से निश्चित प्रमाण प्रस्तुत किये हैं कि प्रत्येक मनु के बाद प्रलय होता ही है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने भी श्रील जीव गोस्वामी का अनुमोदन किया है और भागवतामृत से प्रत्येक मनु के पश्चात् ऐसे जल प्लावन के उद्धारण दिये हैं। इसके अतिरिक्त, भगवान् अपने भक्त सत्यव्रत पर विशेष अनुग्रह प्रदर्शित करने के लिए इसी विशेष युग में स्वयं अवतरित हुए।

सुरासुराणामुदधिं मथ्नुतां मन्दराचलम् ।

दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

सुर—आस्तिकों; असुराणाम्—तथा नास्तिकों का; उदधिम्—समुद्र में; मथ्नाताम्—मंथन करते हुए; मन्दराचलम्—मन्दराचल पर्वत को; दध्ने—धारण किया; कमठ—कच्छप; रूपेण—के रूप में; पृष्ठे—पीठ पर; एकादशे—ग्यारहवाँ; विभुः—महान् ।

भगवान् का ग्यारहवाँ अवतार कच्छप के रूप में हुआ, जिनकी पीठ ब्रह्माण्ड के आस्तिकों तथा नास्तिकों के द्वारा मथानी के रूप में प्रयुक्त किये जा रहे मन्दराचल पर्वत के लिए आधार बनी ।

तात्पर्य : एक बार आस्तिक तथा नास्तिक दोनों ही समुद्र से अमृत निकालने में जुटे थे, जिससे वे सब प्राप्त अमृत पीकर अमर हो सकें। उस समय मन्दराचल पर्वत मथानी की तरह प्रयुक्त किया गया और समुद्र के जल में भगवान् के अवतार कच्छप की पीठ को पर्वत के लिए आधार बनाया गया ।

धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च ।

अपाययत्सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन् स्त्रिया ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

धान्वन्तरम्—धन्वन्तरि नामक भगवान् का अवतार; द्वादशमम्—बारहवाँ; त्रयोदशमम्—तेरहवाँ; एव—निश्चय ही; च—तथा; अपाययत्—पीने के लिए दिया; सुरान्—देवताओं को; अन्यान्—अन्यों को; मोहिन्या—सुन्दरी द्वारा; मोहयन्—मोहते हुए; स्त्रिया—स्त्री के रूप में ।

बारहवें अवतार में भगवान् धन्वन्तरि के रूप में प्रकट हुए और तेरहवें अवतार में उन्होंने स्त्री के मनोहर सौंदर्य द्वारा नास्तिकों को मोहित किया और देवताओं को पीने के लिए अमृत प्रदान किया ।

चतुर्दशं नारसिंहं बिभ्रदैत्येन्द्रमूर्जितम् ।

ददार करजैरूरावेरकां कटकृद्यथा ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

चतुर्दशम्—चौदहवें; नार-सिंहम्—आधा मनुष्य तथा आधा सिंह शरीर वाले भगवान् का अवतार; बिभ्रत्—अवतरित हुए; दैत्य-इन्द्रम्—नास्तिकों का राजा; ऊर्जितम्—अत्यन्त बलिष्ठ; ददार—चीर डाला; करजैः—नाखूनों से; ऊरौ—गोद में; एरकाम्—बेंत को; कट-कृत्—बढ़ई; यथा—जिस तरह ।

चौदहवें अवतार में भगवान् नृसिंह के रूप में प्रकट हुए और अपने नाखूनों से नास्तिक हिरण्यकशिपु के बलिष्ठ शरीर को उसी प्रकार चीर डाला, जिस प्रकार बड़ई लट्ठे को चीर देता है।

पञ्चदशं वामनकं कृत्वागादध्वरं बलेः ।

पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिपिष्टपम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

पञ्चदशम्—पन्द्रहवाँ; वामनकम्—बौना ब्राह्मण; कृत्वा—धारण करके; अगात्—गये; अध्वरम्—यज्ञ स्थल में; बलेः—राजा बलि के; पद-त्रयम्—केवल तीन पद; याचमानः—माँगते हुए; प्रत्यादित्सुः—मन में लौटाने की इच्छा करते हुए; त्रि-पिष्टपम्—तीनों लोकों का राज्य।

पन्द्रहवें अवतार में भगवान् ने बौने ब्राह्मण (वामन) का रूप धारण किया और वे महाराज बलि द्वारा आयोजित यज्ञ में पधारे। यद्यपि वे हृदय से तीनों लोकों का राज्य प्राप्त करना चाह रहे थे, किन्तु उन्होंने केवल तीन पग भूमि दान में माँगी।

तात्पर्य : सर्वशक्तिमान भगवान् किसी को भी थोड़ा-थोड़ा देकर पूरे ब्रह्माण्ड विश्व का राज्य प्रदान कर सकते हैं और इसी प्रकार से एक छोटा-सा भूखण्ड माँगने के बहाने ब्रह्माण्ड का राज्य वापस भी ले सकते हैं।

अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान् ।

त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

अवतारे—भगवान् के अवतार में; षोडशमे—सोलहवें; पश्यन्—देखते हुए; ब्रह्म-द्रुहः—ब्राह्मणों के आदेशों की अवज्ञा करने वाले; नृपान्—राजाओं को; त्रिः-सप्त—सात का तीन गुना, इक्कीस बार; कृत्वः—किया था; कुपितः—क्रुद्ध; निः—रहित; क्षत्राम्—प्रशासक वर्ग से; अकरोत्—किया; महीम्—पृथ्वी को।

सोलहवें अवतार में भगवान् ने (भृगुपति के रूप में) क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार किया, क्योंकि वे ब्राह्मणों (बुद्धिमान वर्ग) के विरुद्ध किये गये विद्रोह के कारण उनसे क्रुद्ध थे।

तात्पर्य : यह अपेक्षा की जाती है कि क्षत्रिय या प्रशासक वर्ग उन बुद्धिमान मनुष्यों के निर्देश से इस लोक का शासन चलायेंगे, जो प्रामाणिक शास्त्रों के आधार पर शासकों को निर्देश देते हैं। शासक इसी निर्देश के अनुसार शासन चलाते हैं। जब कभी क्षत्रिय या शासक वर्ग विद्वान तथा बुद्धिमान ब्राह्मणों के आदेशों की अवज्ञा करते हैं, तो वे बलपूर्वक उनके पदों से हटा दिये जाते हैं और बेहतर प्रशासन की व्यवस्था की जाती है।

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ।

चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; सप्तदश—सत्रहवें अवतार में; जातः—उत्पन्न हुआ; सत्यवत्याम्—सत्यवती के गर्भ से; पराशरात्—पराशर मुनि द्वारा; चक्रे—तैयार किया; वेद-तरोः—वेदों के कल्पवृक्ष की; शाखाः—शाखाएँ; दृष्ट्वा—देखकर; पुंसः—सामान्य जन; अल्प-मेधसः—अल्पज्ञ।

तत्पश्चात् सत्रहवें अवतार में भगवान्, पराशर मुनि के माध्यम से सत्यवती के गर्भ से श्री व्यासदेव के रूप में प्रकट हुए। उन्होंने यह देखकर कि जन-सामान्य अल्पज्ञ हैं, एकमेव वेद को अनेक शाखाओं-प्रशाखाओं में विभक्त कर दिया।

तात्पर्य : मूल रूप से वेद एक है। किन्तु श्रील व्यासदेव ने मूल वेद को चार में विभाजित कर दिया—*साम*, *यजुर्*, *ऋग्*, तथा *अथर्व*—और तब इन सबकी व्याख्या पुराणों तथा महाभारत जैसी विविध शाखाओं के रूप में की। सामान्य लोगों के लिए वैदिक भाषा तथा विषय अत्यन्त कठिन होते हैं। उन्हें केवल अत्यन्त बुद्धिमान तथा स्वरूप-सिद्ध ब्राह्मण ही समझ सकते हैं। किन्तु वर्तमान कलियुग तो अज्ञानी मनुष्यों से भरा पड़ा है। यहाँ तक कि ब्राह्मण पिता से उत्पन्न होने वाली सन्तान भी वर्तमान युग में शूद्रों या स्त्रियों से श्रेष्ठ नहीं होती। द्विजों अर्थात् ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे सांस्कृतिक शुद्धिकरण की प्रक्रिया अर्थात् 'संस्कार' सम्पन्न करेंगे, किन्तु वर्तमान युग के बुरे प्रभावों के कारण तथाकथित ब्राह्मण तथा अन्य उच्च वर्ग के लोग भी सुसंस्कृत नहीं रह गये। वे *द्विज-बन्धु* कहलाते हैं जिसका अर्थ है द्विजों के मित्र तथा परिजन। लेकिन इन *द्विज-बन्धुओं* की गिनती शूद्रों तथा स्त्रियों में की जाती है। श्रील

व्यासदेव ने द्विज-बन्धुओं, शूद्रों तथा स्त्रियों जैसे अल्पज्ञों को ध्यान में रखकर वेदों को विविध शाखाओं-प्रशाखाओं में विभाजित किया।

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया ।

समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

नर—मनुष्य; देवत्वम्—देवत्व; आपन्नः—का स्वरूप ग्रहण करके; सुर—देवता; कार्य—कर्म; चिकीर्षया—सम्पन्न करने के लिए; समुद्र—हिन्द महासागर; निग्रह-आदीनि—निग्रह इत्यादि.; चक्रे—किया; वीर्याणि—अतिमानवीय पराक्रम; अतः परम्—तत्पश्चात्।

अठारहवें अवतार में भगवान् राजा राम के रूप में प्रकट हुए। उन्होंने देवताओं के लिए मनभावन कार्य करने के उद्देश्य से हिन्द महासागर को वश में करते हुए समुद्र पार के निवासी नास्तिक राजा रावण का वध करके अपनी अतिमानवीय शक्ति का प्रदर्शन किया।

तात्पर्य : भगवान् श्रीराम ने मनुष्य का रूप धारण किया और ब्रह्माण्ड की व्यवस्था बनाए रखने वाले प्रशासक अधिकारी देवताओं की प्रसन्नता के लिए कुछ कार्य करने हेतु पृथ्वी पर प्रकट हुए। कभी-कभी भौतिक सभ्यता की उन्नति के कारण, भौतिक विज्ञान एवं अन्य कार्यों की सहायता से भगवान् की सुस्थापित व्यवस्था को चुनौती देने के उद्देश्य से, रावण तथा हिरण्यकशिपु जैसे बड़े-बड़े असुर एवं नास्तिक तथा ऐसे अन्य लोग अत्यन्त प्रसिद्ध बन जाते हैं। उदाहरणार्थ, भौतिक साधनों के द्वारा अन्य लोकों को उड़ान भरने का प्रयत्न स्थापित व्यवस्था के प्रति चुनौती है। प्रत्येक लोक की परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं और भगवान् की आचार-संहिता के अनुसार उनमें विशेष हेतु के लिए विभिन्न वर्ग के लोग निवास करते हैं। लेकिन भौतिक प्रगति में थोड़ी सी सफलता प्राप्त करके कभी-कभी ईश्वर-विहीन भौतिकतावादी व्यक्ति भगवान् के अस्तित्व को चुनौती देते हैं। रावण इनमें से एक था। वह सामान्य लोगों को, उनमें योग्यता न होते हुए भी, भौतिक साधनों के द्वारा इन्द्रलोक (स्वर्ग) को भेजना चाहता था। वह स्वर्ग तक एक सीढ़ी बना देना चाहता था, जिससे लोगों को उस ग्रह तक पहुँचने के लिए आवश्यक पुण्यकर्म न करने पड़ें। वह भगवान् की सुस्थापित व्यवस्था के विरुद्ध अन्य कार्य करने को भी

उद्यत था। यहाँ तक कि उसने भगवान् श्रीराम की सत्ता को भी चुनौती देकर उनकी पत्नी सीता का अपहरण कर लिया। निस्सन्देह, देवताओं की विनती तथा इच्छा के फलस्वरूप भगवान् राम इस नास्तिक को दण्ड देने के लिए ही आये थे। फलस्वरूप, उन्होंने रावण की चुनौती स्वीकार की। और यह सम्पूर्ण लीला *रामायण* की विषय-वस्तु है। चूँकि रामचन्द्रजी भगवान् थे, अतः उन्होंने ऐसे अतिमानवीय कार्य किये, जिन्हें भौतिक दृष्टि से समुन्नत रावण समेत कोई भी मनुष्य नहीं कर सकता था। उन्होंने हिन्द महासागर के आर-पार जल में तैरने वाले पत्थरों का राजमार्ग तैयार किया। आधुनिक विज्ञानियों ने भारहीनता के क्षेत्र में खोजें की हैं, किन्तु वे कहीं भी या सर्वत्र ऐसी भारहीनता उत्पन्न नहीं कर सकते हैं। चूँकि भारहीनता की सृष्टि भगवान् द्वारा की गई है, जिससे वे बड़े-बड़े ग्रहों को वायु में उड़ाते तथा तैराते हैं, अतएव उन्होंने इसी पृथ्वी पर भारहीन पत्थर तैयार करके समुद्र पर पत्थर का ऐसा पुल (सेतु) बना दिया जो बिना स्तम्भों के टिक गया। यही ईश्वरीय शक्ति का प्रदर्शन है।

एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।

रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

एकोनविंशे—उन्नीसवें में; विंशतिमे—बीसवें में भी; वृष्णिषु—वृष्णि वंश में; प्राप्य—पाकर; जन्मनी—जन्म; राम—बलराम; कृष्णौ—तथा श्रीकृष्ण; इति—इस प्रकार; भुवः—जगत का; भगवान्—भगवान् ने; अहरत्—दूर किया; भरम्—बोझ को।

उन्नीसवें तथा बीसवें अवतारों में भगवान् वृष्णि वंश में (यदु कुल में) भगवान् बलराम तथा भगवान् कृष्ण के रूप में अवतरित हुए और इस तरह उन्होंने संसार के भार को दूर किया।

तात्पर्य : इस श्लोक में *भगवान्* शब्द का विशिष्ट उल्लेख यह संकेत है कि बलराम तथा कृष्ण भगवान् के आदि रूप हैं। इसकी अधिक व्याख्या आगे की जायेगी। जैसाकि हम इस अध्याय के प्रारम्भ में देख चुके हैं, भगवान् कृष्ण पुरुष से आये हुए अवतार नहीं हैं। वे साक्षात् परमेश्वर हैं और बलराम भगवान् के प्रथम पूर्णांश हैं। बलदेव से आगे पूर्णांशों की श्रृंखला का इस

प्रकार विस्तार होता है—वासुदेव, संकर्षण, अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न। भगवान् श्रीकृष्ण वासुदेव हैं और बलदेव संकर्षण हैं।

ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्विषाम् ।

बुद्धो नाम्नाञ्जनसुतः कीकटेषु भविष्यति ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; कलौ—कलियुग में; सम्प्रवृत्ते—अनुघटित होगा; सम्मोहाय—मोहने के लिए; सुर—आस्तिक; द्विषाम्—ईर्ष्यालुओं को; बुद्धः—भगवान् बुद्ध; नाम्ना—नामक; अञ्जन-सुतः—अंजना के पुत्र; कीकटेषु—गया (बिहार) प्रान्त में; भविष्यति—होगा।

तब भगवान् कलियुग के प्रारम्भ में गया प्रान्त में अंजना के पुत्र, बुद्ध के रूप में उन लोगों को मोहित करने के लिए प्रकट होंगे, जो श्रद्धालु आस्तिकों से ईर्ष्या करते हैं।

तात्पर्य : भगवान् के शक्तिशाली अवतार बुद्ध, गया (बिहार) प्रान्त में अंजना के पुत्र रूप में प्रकट हुए और उन्होंने अहिंसा की अपनी खुद की विचारधारा का उपदेश किया और वेदों द्वारा अनुमत पशु यज्ञों तक की भर्त्सना की। जिस समय भगवान् बुद्ध प्रकट हुए, तब जनसामान्य नास्तिक था और पशुमांस को सर्वोपरि स्थान देने लगा था। वैदिक यज्ञों के बहाने प्रायः प्रत्येक स्थान कसाईघर में बदल गया था और बेरोकटोक पशुवध किया जाता था। भगवान् बुद्ध ने दीन पशुओं पर दया करके अहिंसा का उपदेश किया। उन्होंने कहा कि वे वैदिक नियमों में विश्वास नहीं करते। उन्होंने पशुवध के कारण होने वाले मनोवैज्ञानिक दुष्प्रभावों पर बल दिया। कलियुग के उन अल्पज्ञ व्यक्तियों ने, जो ईश्वर में विश्वास नहीं करते थे, उनके सिद्धान्त का पालन किया और वे कुछ काल तक नैतिक अनुशासन तथा अहिंसा की शिक्षा पाते रहे, जो ईश-साक्षात्कार के पथ पर अग्रसर होने के लिए प्राथमिक कदम है। बुद्ध ने नास्तिकों को मोहित किया, क्योंकि उनके ऐसे नास्तिक शिष्य ईश्वर में विश्वास नहीं करते थे, लेकिन वे उन बुद्ध में सम्पूर्ण श्रद्धा रखते थे जो स्वयं भगवान् के अवतार थे। इस प्रकार श्रद्धाविहीन व्यक्तियों को भगवान् बुद्ध के रूप में ईश्वर में विश्वास कराया गया। यह भगवान् बुद्ध की कृपा थी कि उन्होंने अश्रद्धालुओं को अपने प्रति श्रद्धालु बनाया।

भगवान् बुद्ध के अवतार के पूर्व पशुवध समाज का प्रमुख अंग बन चुका था। लोगों का दावा था कि ये वैदिक यज्ञ थे। जब वेदों को प्रामाणिक गुरु-शिष्य परम्परा से ग्रहण नहीं किया जाता, तब वेदों का आकस्मिक पाठक वेदों की अलंकारमयी भाषा के फेर में आ जाता है। *भगवद्गीता* में ऐसे मूर्ख विद्वानों (*अविपश्चितः*) के विषय में एक टिप्पणी की गई है। वैदिक साहित्य के मूर्ख विद्वान, जो शिष्य-परम्परा के दिव्य अनुभूत स्रोतों से दिव्य संदेश ग्रहण नहीं करते, उनके लिए भ्रमित होना निश्चित है। उनके लिए *कर्मकाण्ड* ही सब कुछ होता है। उनके ज्ञान में गहराई नहीं रहती। *भगवद्गीता* (१५.१५) के अनुसार—*वेदैश्च सर्वैर् अहम् एव वेद्यः*—वेदों की समग्र प्रणाली मनुष्य को क्रमशः भगवान् के पथ पर ले जाने वाली है। वैदिक साहित्य की सारी रूपरेखा ही है परमेश्वर, आत्मा, दृश्य जगत तथा इन सबके सम्बन्धों को जानना। जब यह सम्बन्ध ज्ञात हो जाता है, तो सापेक्ष कार्य चालू होता है और इस कार्य के फलस्वरूप जीवन का चरम उद्देश्य या भगवान् के धाम वापस जाने का कार्य सरलता से सम्पन्न हो जाता है। दुर्भाग्यवश वेदों के अनधिकारी विद्वान संस्कारों के प्रति अत्यधिक लुब्ध रहते हैं, जिससे सहज प्रगति बाधित होती है।

ऐसी नास्तिक प्रवृत्ति वाले मोहग्रस्त लोगों के लिए, भगवान् बुद्ध आस्तिकता के प्रतीक हैं। इसीलिए उन्होंने सर्वप्रथम पशुवध करने की प्रवृत्ति को रोकना चाहा। पशु के हत्यारे भगवान् के धाम को वापस जाने की दिशा में हानिकारक तत्त्व हैं। पशुवध करने वाले दो प्रकार के होते हैं। कभी-कभी आत्मा को भी “पशु” या “जीव” कहा जाता है। अतः पशुओं का वध करने वाले एवं आत्मा के स्वरूप को भूल जाने वाले, दोनों ही पशु-वधिक हैं।

महाराज परीक्षित ने कहा कि केवल पशुवध करने वाले को ही भगवान् के दिव्य संदेश का स्वाद नहीं मिल पाता। अतः जिन्हें भगवद्मार्ग की शिक्षा दी जानी है, उन्हें सर्वप्रथम उपर्युक्त विधि से *पशुवध की क्रिया को बन्द करना सिखाना होगा। यह कहना मूर्खता है कि पशुवध को आत्म-साक्षात्कार से कुछ लेना-देना नहीं।* इस घातक सिद्धान्त के कारण कलियुग की कृपा से ऐसे अनेक तथाकथित संन्यासी सामने आये हैं, जो वेदों के बहाने पशुवध का उपदेश देते हैं। इस

विषय की व्याख्या भगवान् चैतन्य तथा मौलाना चाँद काजी साहेब की वार्ता में पहले ही की जा चुकी है। वेदों में वर्णित पशुयज्ञ कसाईघरों में अनियन्त्रित पशु-हत्या से भिन्न है। चूँकि असुर लोग या वैदिक साहित्य के तथाकथित पण्डित वेदों में पशुवध का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं, फलस्वरूप भगवान् बुद्ध ने बाह्य रूप से वेदों के प्रमाण को अस्वीकार किया। उनके द्वारा वेदों का यह तिरस्कार लोगों को पशु-हत्या के पाप से बचाने तथा बेचारे दीन पशुओं को उनके बड़े भाई के द्वारा वध किये जाने से बचाने के लिए किया गया, जो विश्वबन्धुत्व, शान्ति, न्याय तथा समानता का नारा बुलन्द करते हैं। पशु-हत्या होते रहने पर कोई न्याय नहीं हो सकता। भगवान् बुद्ध इसे पूरी तरह रोकना चाहते थे, फलतः उनका अहिंसा सम्प्रदाय न केवल भारत में, अपितु देश के बाहर भी प्रचारित होता गया।

शास्त्रीय दृष्टि से भगवान् बुद्ध का दर्शन नास्तिकवाद कहलाता है, क्योंकि वह परमेश्वर को नहीं मानता और वेदों का बहिष्कार करता है। किन्तु भगवान् द्वारा यह छलावा मात्र है। भगवान् बुद्ध परमेश्वर के अवतार हैं, अतएव वे वैदिक ज्ञान के मूल संस्थापक हैं। फलस्वरूप, वे वैदिक दर्शन का निषेध नहीं कर सकते। किन्तु उन्होंने ऊपरी रूप से इसका निषेध किया, क्योंकि सुरद्विष या वे असुर जो सदैव भगवद्भक्तों से ईर्ष्या करते हैं, वेदों का हवाला देकर गोवध या पशु-हत्या का समर्थन करते हैं और अब यह आधुनिक संन्यासियों द्वारा किया जा रहा है। भगवान् बुद्ध ने वेदों के प्रमाण का ही सर्वथा निषेध किया। यह केवल सैद्धान्तिक है। यदि ऐसा न होता तो उन्हें भगवान् का अवतार न स्वीकार किया गया होता। न ही वैष्णव आचार्य जयदेव कवि ने दिव्य गीतों में उनकी पूजा की होती। भगवान् बुद्ध ने वेदों के प्रमाण की स्थापना के लिए (तथा शंकराचार्य ने भी) उस काल के लिए अनुकूल विधि से वेदों के मूलभूत नियमों का उपदेश किया। इस प्रकार भगवान् बुद्ध तथा आचार्य शंकर दोनों ने ही आस्तिकता का मार्ग प्रशस्त किया और वैष्णव आचार्यों ने, विशेष रूप से भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने, लोगों को भगवद्धाम वापस जाने का मार्गदर्शन कराया।

हमें प्रसन्नता है कि लोग भगवान् बुद्ध के अहिंसा आन्दोलन में रुचि ले रहे हैं। लेकिन क्या वे इसे गम्भीरतापूर्वक लेंगे और पशुओं के कसाईघरों को एकदम बन्द करा देंगे? यदि ऐसा नहीं होता, तो अहिंसा सम्प्रदाय का कोई अर्थ नहीं है।

श्रीमद्भागवत की रचना कलियुग के आरम्भ के पूर्व ही (पाँच हजार वर्ष पूर्व) हुई थी और भगवान् बुद्ध का आविर्भाव लगभग दो हजार छह सौ वर्ष पूर्व हुआ था। अतः श्रीमद्भागवत में भगवान् बुद्ध की भविष्यवाणी की गई है। ऐसा प्रामाणिक शास्त्र-ग्रन्थ है। ऐसी अनेक भविष्यवाणियाँ हैं जो एक-एक करके पूरी होती जा रही हैं। ये सब श्रीमद्भागवत की सार्थकता का सूचक होगी, क्योंकि यह किसी त्रुटि, मोह, छल तथा अपूर्णता से रहित है जो कि बद्धजीवों के चार दोष हैं। मुक्तात्माएँ इन दोषों से ऊपर हैं, अतएव वे सुदूर भविष्य की घटनाओं की भविष्यवाणी कर सकती हैं।

अथासौ युगसन्ध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु ।

जनिता विष्णुयशसो नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; असौ—वही भगवान्; युग-सन्ध्यायाम्—युगों के बीच में; दस्यु—लुटेरे; प्रायेषु—प्रायः; राजसु—शासक; जनिता—जन्म लेगा; विष्णु—विष्णु नामक; यशसः—‘यशा’ कुलनामयुक्त; नाम्ना—नाम से; कल्किः—भगवान् का अवतार; जगत्-पतिः—जगत के स्वामी।

तत्पश्चात् सृष्टि के सर्वोसर्वा भगवान् दो युगों के सन्धिकाल में कल्कि अवतार के रूप में जन्म लेंगे और विष्णु यशा के पुत्र होंगे। उस समय पृथ्वी के शासक लुटेरे बन चुके होंगे।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् द्वारा कल्कि रूप में अवतार लेने की एक और भविष्यवाणी है। उन्हें दो युगों के सन्धिकाल में अर्थात् कलियुग के अन्त तथा सत्ययुग के प्रारम्भ में जन्म लेना है। सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि, इन चार युगों का चक्र मास-चक्र की भाँति चलता रहता है। वर्तमान कलियुग ४,३२,००० वर्ष तक चलेगा जिसमें से कुरुक्षेत्र युद्ध तथा राजा परीक्षित के राज्य के अन्त के बाद से लगभग ५,००० वर्ष बीत चुके हैं। अतः ४,२७,००० वर्ष अभी भी शेष हैं। इस काल के बाद कल्कि अवतार होगा जैसा कि श्रीमद्भागवत में भविष्यवाणी की गई है। उनके

पिता एक विद्वान ब्राह्मण विष्णु यशा होंगे और उनका ग्राम सम्भल बताया गया है। जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, ये सारी भविष्यवाणियाँ कालक्रम में सिद्ध होंगी। *श्रीमद्भागवत* की यही प्रामाणिकता है।

अवतारा ह्यसङ्ख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ।

यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

अवताराः—अवतार; हि—निश्चय ही; असङ्ख्येयाः—असंख्य; हरेः—हरि के, भगवान् के; सत्त्व-निधेः—अच्छाई (सतो गुण) के सागर के; द्विजाः—ब्राह्मण; यथा—जिस तरह; अविदासिनः—अक्षय; कुल्याः—नाले; सरसः—विशाल झीलों के; स्युः—है; सहस्रशः—हजारों।

हे ब्राह्मणों, भगवान् के अवतार उसी तरह असंख्य हैं, जिस प्रकार अक्षय जल के स्रोत से निकलने वाले (असंख्य) झरने।

तात्पर्य : भगवान् के अवतारों की यहाँ पर दी गई सूची पूर्ण नहीं है। यह केवल समस्त अवतारों की आंशिक झलक है। अन्य अनेक अवतार हैं—यथा श्रीहयग्रीव, हरि, हंस, पृथिवी, विष्णु, सत्यसेन, वैकुण्ठ, सार्वभौम, विष्वक्सेन, धर्मसेतु, सुधामा, योगेश्वर, बृहदभानु तथा प्राचीन युग के अन्य अनेक अवतार। श्री प्रह्लाद महाराज ने अपनी स्तुति में कहा है, “हे प्रभु, आप अपने भक्तों के पालन तथा अभक्तों के संहार के लिए उतने ही अवतार धारण करते हैं, जितनी कि जलचर, वनस्पतियाँ, सरीसृप, पक्षी, जन्तु, मनुष्य, देवता आदि योनियाँ हैं। इस प्रकार आप विभिन्न युगों की आवश्यकतानुसार स्वयं अवतरित होते हैं। कलियुग में आप भक्त के वेश में अवतरित हुए हैं।” कलियुग में भगवान् का यह अवतार भगवान् चैतन्य महाप्रभु के रूप में है। *भागवत* तथा अन्य शास्त्रों में ऐसे कई स्थल हैं, जहाँ श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में भगवान् के अवतार का स्पष्ट उल्लेख हुआ है। *ब्रह्म-संहिता* में भी परोक्ष रूप में कहा गया है कि यद्यपि भगवान् के अनेक अवतार हुए हैं यथा राम, नृसिंह, वराह, मत्स्य, कूर्म आदि, लेकिन कभी-कभी भगवान् खुद अवतरित होते हैं। अतः भगवान् कृष्ण तथा भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु अवतार नहीं हैं, अपितु वे अन्य समस्त अवतारों के मूल उद्गम हैं। इसकी स्पष्ट व्याख्या अगले श्लोक में की

गई है। इस तरह भगवान् उन असंख्य अवतारों के अक्षय स्रोत हैं, जिनका उल्लेख सदा नहीं किया जाता। किन्तु ऐसे अवतार विशिष्ट अलौकिक कार्यकलापों के कारण विख्यात होते हैं जो किसी सामान्य जीव द्वारा सम्पन्न नहीं हो सकते। भगवान् के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष शक्त्यावेशित अवतारों की यही सामान्य पहचान है। ऐसे कुछ अवतार, जिनका ऊपर उल्लेख हुआ है, प्रायः पूर्णांश हैं। उदाहरणार्थ, कुमारगण दिव्य ज्ञान से विभूषित थे। नारद भक्ति से आविष्ट थे। महाराज पृथु प्रशासनिक कार्य की शक्ति से युक्त थे। मत्स्य अवतार प्रत्यक्ष पूर्णांश है। इस तरह समग्र ब्रह्माण्डों में भगवान् के असंख्य अवतार उसी तरह से निरन्तर होते रहते हैं, जिस प्रकार जल प्रपातों से निरन्तर जल बहता रहता है।

ऋषयो मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः ।

कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयः स्मृताः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

ऋषयः—ऋषिगण; मनवः—समस्त मनु; देवाः—सारे देवता; मनु-पुत्राः—मनु की सारी सन्तानें; महा-ओजसः—अत्यन्त शक्तिमान; कलाः—पूर्णांश के अंश; सर्वे—सामूहिक रूप से; हरेः—भगवान् का; एव—निश्चय ही; स-प्रजापतयः—प्रजापतियों सहित; स्मृताः—जाने जाते हैं।

सारे ऋषि, मनु, देवता तथा विशेष रूप से शक्तिशाली मनु की सन्तानें भगवान् के अंश या उन अंशों की कलाएँ हैं। इसमें प्रजापतिगण भी सम्मिलित हैं।

तात्पर्य : जो अपेक्षतया कम शक्तिशाली होते हैं, वे विभूति कहलाते हैं और जो अधिक शक्तिशाली होते हैं, वे आवेश-अवतार कहलाते हैं।

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।

इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयन्ति युगे युगे ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

एते—ये सब; च—तथा; अंश—पूर्णांश; कलाः—पूर्णांश के भी अंश; पुंसः—परम पुरुष के; कृष्णः—भगवान् कृष्ण; तु—लेकिन; भगवान्—भगवान्; स्वयम्—साक्षात्; इन्द्र-अरि—इन्द्र के शत्रु से; व्याकुलम्—विचलित; लोकम्—सारे लोक को; मृडयन्ति—सुरक्षा प्रदान करते हैं; युगे युगे—विभिन्न युगों में।

उपर्युक्त सारे अवतार या तो भगवान् के पूर्ण अंश या पूर्णांश के अंश (कलाएं) हैं, लेकिन श्रीकृष्ण तो आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। वे सब विभिन्न लोकों में नास्तिकों द्वारा उपद्रव किये जाने पर प्रकट होते हैं। भगवान् आस्तिकों की रक्षा करने के लिए अवतरित होते हैं।

तात्पर्य : इस विशिष्ट श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण को अन्य अवतारों से पृथक् किया गया है। उनकी गणना अवतारों में की जाती है, क्योंकि अहैतुकी कृपावश वे अपने दिव्य धाम से अवतरित होते हैं। 'अवतार' का अर्थ होता है, "नीचे उतरने वाला।" भगवान् के सारे अवतार, जिसमें स्वयं भगवान् सम्मिलित हैं, विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भौतिक जगत के विभिन्न लोकों में तथा विभिन्न योनियों में अवतरित होते हैं। कभी वे स्वयं आते हैं और कभी उनके अलग अलग पूर्णांश (अंश) या अंशांश (कला) या फिर उनके द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से आवेशित अंश इस भौतिक जगत में विशिष्ट कार्यों को सम्पन्न करने के लिए अवतरित होते हैं। भगवान् मूल रूप से समस्त ऐश्वर्य, सामर्थ्य, यश, सौंदर्य, ज्ञान तथा वैराग्य से पूर्ण होते हैं। जब ये पूर्णांशों या अंशांशों द्वारा अंशतः प्रकट होते हैं, तो यह समझना चाहिए कि उन विशिष्ट कार्यों के लिए उनकी विभिन्न शक्तियों के प्राकट्य की आवश्यकता होती है। जब कमरे में बिजली के छोटे-छोटे लट्टू जलते हैं, तो इसका अर्थ यह नहीं होता कि बिजलीघर केवल इन्हीं लट्टुओं तक सीमित है। उसी बिजलीघर से भारी क्षमता वाले बड़े-बड़े औद्योगिक-डायनेमो चलाये जा सकते हैं। इसी प्रकार भगवान् के अवतार सीमित शक्ति का ही प्रदर्शन करते हैं, क्योंकि उस समय उतनी ही शक्ति की आवश्यकता होती है।

उदाहरणार्थ, भगवान् परशुराम ने विरोधी क्षत्रियों का इक्कीस बार संहार करके, तथा भगवान् नृसिंह ने अत्यन्त शक्तिशाली नास्तिक हिरण्यकशिपु को मार करके, असामान्य ऐश्वर्य का प्रदर्शन किया। हिरण्यकशिपु इतना शक्तिशाली था कि उसके मौँहें टेड़ी करने से ही काँपने लगते थे। उच्च लोकों के देवता आयु, सौंदर्य, सम्पत्ति, साज-सामग्री तथा अन्य मामलों में, यहाँ के धनी से धनी मनुष्यों से बढ़-चढ़ कर होते हैं। तो भी वे सब हिरण्यकशिपु से भयभीत थे। इस प्रकार हम

कल्पना कर सकते हैं कि इस भौतिक जगत् में हिरण्यकशिपु कितना शक्तिशाली था। किन्तु भगवान् नृसिंह ने अपने नाखूनों से इस हिरण्यकशिपु के भी खण्ड-खण्ड कर दिये। इसका अर्थ यह हुआ कि भौतिक दृष्टि से कोई चाहे कितना ही बलशाली क्यों न हो, वह भगवान् के नाखूनों की शक्ति का सामना नहीं कर सकता। इसी प्रकार जामदग्न्य ने समस्त अवज्ञाकारी राजाओं को उनके राज्यों में जाकर मारने की दैवी शक्ति दिखलाई। भगवान् के शक्त्यावेश अवतार नारद तथा पूर्णाश अवतार वराह तथा अप्रत्यक्ष आवेश अवतार भगवान् बुद्ध ने जनसमूह में श्रद्धा उत्पन्न की। राम तथा धन्वन्तरि अवतारों ने उनकी ख्याति का तथा बलराम, मोहिनी एवं वामन ने उनके सौंदर्य का प्रदर्शन किया। दत्तात्रेय, मत्स्य, कुमार तथा कपिल ने उनके दिव्य ज्ञान का प्रदर्शन किया। नर तथा नारायण ऋषियों ने उनके त्याग का प्रदर्शन किया। इस प्रकार भगवान् के समस्त अवतारों ने, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न लक्षणों का प्रदर्शन किया, लेकिन आदि भगवान् कृष्ण ने भगवान् के सम्पूर्ण लक्षण प्रकट किये। इस प्रकार इसकी पुष्टि होती है कि वे अन्य समस्त अवतारों के उद्गम हैं। और उनका सबसे असामान्य लक्षण तो वह था, जिसमें उन्होंने गोपियों के साथ अपनी लीलाओं के रूप में अपनी अन्तरंगा शक्ति का प्रदर्शन किया। गोपियों के साथ उनकी लीलाएँ उनके दिव्य अस्तित्व, आनन्द तथा ज्ञान की स्थिति को प्रकट करने वाली हैं, यद्यपि ये ऊपर से प्रणय (काम) जैसी लगती हैं। गोपियों के साथ उनकी लीलाओं के प्रति विशेष आसक्ति का कभी गलत अर्थ नहीं लगाना चाहिए। *भागवत* के दशम स्कंध में इन लीलाओं का वर्णन है। गोपियों के साथ कृष्ण की लीलाओं के दिव्य स्वरूप को समझ पाने के लिए किसी भी जिज्ञासु को यह *भागवत* अन्य नौ स्कंधों द्वारा धीरे-धीरे अग्रसर कराता है।

श्रील जीव गोस्वामी के कथनानुसार यह शास्त्रसम्मत है कि भगवान् कृष्ण अन्य समस्त अवतारों के उद्गम हैं। ऐसा नहीं है कि भगवान् कृष्ण के अवतार का कोई स्रोत है। परम सत्य के सारे लक्षण भगवान् श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व में पूर्ण रूप से निहित हैं और *भगवद्गीता* में भगवान् स्पष्ट घोषित करते हैं कि उनके समान या उनसे बढ़कर कोई सत्य नहीं है। इस श्लोक में *स्वयम्* शब्द का प्रयोग इसकी पुष्टि करने के लिए किया गया है कि भगवान् कृष्ण स्वयं अपने सिवा

अन्य कोई स्रोत नहीं है। यद्यपि अन्य स्थानों में अवतारों को उनके कार्यों के कारण भगवान् कहा गया है, किन्तु उन्हें कहीं भी पूर्ण पुरुषोत्तम नहीं कहा गया। इस श्लोक में *स्वयम्* शब्द परम श्रेय के रूप में उनकी श्रेष्ठता का सूचक है।

अन्तिम आश्रय रूप कृष्ण एक एवं अद्वय हैं। उन्होंने अपना विस्तार विभिन्न अंशों, कलाओं तथा कर्णों के रूप में *स्वयं-रूप*, *स्वयं-प्रकाश*, *तद्-एकात्मा*, *प्राभव*, *वैभव*, *विलास*, *अवतार*, *आवेश* तथा *जीव* के नाम से कर रखा है; ये सभी अनगिनत शक्तियों से युक्त हैं जो तत्सम्बन्धी स्वरूपों एवं व्यक्तित्वों के लिए सर्वथा उपयुक्त होती हैं। अध्यात्म विषय के पंडितों ने अन्तिम आश्रय स्वरूप कृष्ण का अत्यन्त सावधानी से अध्ययन करके, उनके ६४ मुख्य गुण बताये हैं। भगवान् के सारे अंशो या श्रेणियों में इन गुणों का कुछ प्रतिशत ही पाया जाता है। लेकिन श्रीकृष्ण में ये गुण शत-प्रतिशत पाये जाते हैं। *स्वयं-प्रकाश* और *तद् एकात्मा* से लेकर अवतार की श्रेणियों तक के उनके निजी विस्तार, जो सब *विष्णुतत्व* हैं, उनमें ९३ प्रतिशत तक ये दिव्य गुण पाये जाते हैं। शिवजी में, जो न तो *अवतार* हैं, न *आवेश* और न ही इन दोनों के बीच आते हैं, उनमें लगभग ८४ प्रतिशत गुण पाये जाते हैं। किन्तु जीवन की विभिन्न अवस्थाओं वाले जीवों में ये गुण ७८ प्रतिशत तक पाये जाते हैं। इस भौतिक जगत की बद्ध अवस्था में जीव में ये गुण बहुत थोड़ी मात्रा में पाये जाते हैं और पवित्र जीवों में इनकी मात्रा भिन्न हो सकती है। जीवों में सर्वाधिक पूर्ण जीव ब्रह्मा हैं, जो एक ब्रह्माण्ड के अधिष्ठाता हैं। उनमें ७८ प्रतिशत तक ये गुण पूर्ण मात्रा में पाये जाते हैं। अन्य देवताओं में इन गुणों की मात्रा कम होती जाती है और मनुष्य में तो अत्यल्प मात्रा पाई जाती है। मनुष्य जीवन की पूर्णता का मानदण्ड यह है कि वह इन गुणों को ७८ प्रतिशत तक पूर्ण मात्रा में बढ़ाये। जीव में कभी भी शिव, विष्णु या भगवान् कृष्ण के समान गुण नहीं आ सकते। कोई भी जीव ७८ प्रतिशत गुणों को पूर्ण रूप से विकसित कर, दिव्यता प्राप्त कर सकता है पर वह कभी भी शिव, विष्णु या कृष्ण नहीं बन सकता। हाँ, कालक्रम में वह ब्रह्मा बन सकता है। वे दैवी जीव, जो आध्यात्मिक आकाश के ग्रहों के निवासी होते हैं, वे हरिधाम तथा महेशधाम जैसे विभिन्न आध्यात्मिक ग्रहों में भगवान् के सनातन साथी होते हैं। सब धामों के

ऊपर कृष्ण का धाम है, जो कृष्णलोक या गोलोक वृन्दावन कहलाता है। जो जीव अपने में ७८ प्रतिशत गुण पूर्ण मात्रा में विकसित कर लेता है, वह इस भौतिक शरीर को त्यागने के पश्चात् कृष्णलोक जाने का भागी बन जाता है।

जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः ।

सायं प्रातर्गृणन् भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

जन्म—जन्म; गुह्यम्—गुप्त; भगवतः—भगवान् का; यः—जो; एतत्—वे सब; प्रयतः—सावधानी से; नरः—मनुष्य; सायम्—शाम को; प्रातः—प्रातःकाल; गृणन्—पाठ करता, बाँचता है; भक्त्या—भक्तिपूर्वक; दुःख-ग्रामात्—समस्त कष्टों से; विमुच्यते—छूट जाता है।

जो कोई भी भगवान् के गुह्य अवतारों का सावधानीपूर्वक प्रतिदिन सुबह तथा शाम को पाठ करता है, वह जीवन के समस्त दुखों से छूट जाता है।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* में भगवान् ने घोषणा की है कि जो कोई उनके दिव्य जन्म तथा कर्म के तत्त्वों को जानता है, वह इस अस्थायी भौतिक संसार से छूट कर भगवद्धाम को जाता है। अतएव इस भौतिक जगत में भगवान् के अवतार की गुह्यता को भलीभाँति जान लेने पर भौतिक बन्धन से छुटकारा प्राप्त हो जाता है। अतः भगवान् का जन्म तथा उनके कर्म, जिन्हें वे जनसामान्य के कल्याण हेतु प्रकट करते हैं, सामान्य नहीं होते। वे गुह्य हैं और जो भक्ति-पूर्वक इस विषय की गम्भीरता को जानना चाहते हैं, उन्हें ही यह रहस्य प्रकट हो पाता है। इस तरह उन्हें भवबन्धन से विमुक्ति प्राप्त हो जाती है। अतः यह सलाह दी गई है कि जो कोई *भागवत* के इस अध्याय का, जिसमें भगवान् के विभिन्न अवतारों का वर्णन है, भक्ति तथा श्रद्धापूर्वक केवल पाठ करता है उसे भगवान् के जन्मों तथा कर्मों का अन्तर्दर्शन प्राप्त हो जाता है। *विमुक्ति* शब्द इस बात का सूचक है कि भगवान् का जन्म तथा उनके कर्म दिव्य हैं; अन्यथा मात्र उनका पाठ करने से किसी को मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। अतएव ये गुह्य हैं और जो भक्ति के निर्धारित विधि-विधानों का पालन नहीं करते, वे भगवान् के जन्म तथा कर्म के रहस्यों को जान पाने का अधिकार नहीं रखते।

एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः ।

मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

एतत्—ये सब; रूपम्—रूप; भगवतः—भगवान् के; हि—निश्चय ही; अरूपस्य—जिनका कोई भौतिक रूप नहीं है उनका; चित्-आत्मनः—ब्रह्म के; माया—भौतिक शक्ति, माया; गुणैः—गुणों से; विरचितम्—निर्मित; महत्-आदिभिः—पदार्थ के अवयवों से; आत्मनि—आत्मा में।

भगवान् के विराट रूप की धारणा, जिसमें वे इस भौतिक जगत में प्रकट होते हैं, काल्पनिक है। यह तो अल्पज्ञों (तथा नवदीक्षितों) को भगवान् के रूप की धारणा में प्रवेश कराने के लिए है। लेकिन वस्तुतः भगवान् का कोई भौतिक रूप नहीं होता।

तात्पर्य : भगवान् के नाना अवतारों के साथ-साथ उनके विश्व-रूप या विराट-रूप की धारणा का उल्लेख नहीं किया गया है, क्योंकि ऊपर बताये गये भगवान् के सारे अवतार दिव्य हैं और उनके शरीरों में भौतिकता का रंचमात्र भी स्पर्श नहीं है। उनके शरीर तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं होता, जैसाकि बद्धजीव में होता है। विराट रूप की कल्पना तो केवल नवदीक्षित पूजकों के लिए है। उन्हीं के लिए भौतिक विराट-रूप प्रस्तुत किया जाता है, जिसकी व्याख्या द्वितीय स्कंध में की जायेगी। विराट-रूप में विभिन्न लोकों के भौतिक रूप को उनके पाँव, हाथ आदि के रूप में कल्पित किया गया है। वस्तुतः ऐसे सब वर्णन नवदीक्षितों के लिए होते हैं। वे पदार्थ से आगे कुछ भी नहीं सोच पाते। भगवान् के भौतिक बोध की गणना उनके वास्तविक रूपों की सूची में नहीं की जाती। परमात्मा रूप में भगवान् प्रत्येक भौतिक रूप के भीतर रहते हैं, यहाँ तक कि परमाणुओं के भी भीतर रहते हैं, लेकिन बाह्य भौतिक रूप तो भगवान् एवं जीव दोनों के लिए कल्पनामात्र है। बद्धजीवों के वर्तमान स्वरूप भी वास्तविक नहीं हैं। निष्कर्ष यह है कि भगवान् के विराट-रूप की धारणा काल्पनिक है। भगवान् तथा जीव दोनों ही जीवंत आत्मा हैं और उनका मूल शरीर आध्यात्मिक (चिन्मय) है।

यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले ।

एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस प्रकार; नभसि—आकाश में; मेघ-ओघः—बादलों का समूह; रेणुः—धूल; वा—तथा; पार्थिवः—मलिनता, धुंधलका; अनिले—वायु में; एवम्—इस प्रकार; द्रष्टरि—देखने वाले को; दृश्यत्वम्—देखने के लिए; आरोपितम्—आरोपित होता है; अबुद्धिभिः—अल्पज्ञों द्वारा ।

बादल तथा धूल वायु द्वारा ले जाए जाते हैं, लेकिन अल्पज्ञ लोग कहते हैं कि आकाश मेघाच्छादित है और वायु धूलिमय (मलिन) है। इसी प्रकार वे लोग आत्मा के विषय में भी भौतिक शरीर की धारणाओं का आरोपण करते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर आगे और पुष्टि की गई है कि हम उन भगवान् को अपने भौतिक नेत्रों तथा इन्द्रियों से नहीं देख सकते, जो पूर्ण रूप से आत्मा हैं। यहाँ तक कि हम जीवों के भौतिक शरीर में विद्यमान आध्यात्मिक स्फुलिंग तक की पहचान नहीं कर पाते। हम शरीर के बाह्य आवरण या जीव के सूक्ष्म मन की तलाश तो करते हैं, लेकिन हम शरीर के भीतर का आध्यात्मिक स्फुलिंग नहीं देख पाते। अतएव हमें जीव के स्थूल शरीर की उपस्थिति के कारण जीव की उपस्थिति स्वीकारनी पड़ती है। इसी प्रकार, जो लोग भगवान् का दर्शन अपने वर्तमान भौतिक नेत्रों से या भौतिक इन्द्रियों से करना चाहते हैं, उन्हें *विराट*-रूप का ध्यान करने की सलाह दी जाती है। उदाहरणार्थ, जब कोई व्यक्ति अपनी कार में बैठ कर कहीं जाता है, जिसे आसानी से देखा जा सकता है, तो उस कार की पहचान उसमें बैठे व्यक्ति से की जाती है। जब राष्ट्रपति अपनी विशिष्ट कार में बैठ कर कहीं जाता है, तो हम कहते हैं, “वह रहा राष्ट्रपति।” उस समय, हम कार की पहचान राष्ट्रपति के साथ करते हैं। इसी प्रकार उन अल्पज्ञ व्यक्तियों को जो बिना जरूरी योग्यता के ईश्वर का तुरन्त दर्शन करना चाहते हैं, उन्हें ऐसा दिखाया जाता है कि विशालकाय भौतिक ब्रह्माण्ड भगवान् का रूप है, यद्यपि भगवान् भीतर तथा बाहर सर्वत्र हैं। इस प्रसंग में आकाश के बादल तथा आकाश की नीलिमा का उदाहरण लिया जा सकता है। यद्यपि आकाश की नीलिमा तथा आकाश भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु हम आकाश के रंग को नीला समझते हैं। परंतु यह तो केवल अल्पज्ञ की सामान्य धारणा है।

अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणबृंहितम् ।

अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

अतः—यह; परम्—परे; यत्—जो; अव्यक्तम्—अप्रकट; अव्यूढ—बिना किसी प्रकार के रूप के; गुण-बृंहितम्—गुणों से प्रभावित; अदृष्ट—अदृश्य, अनदेखा; अश्रुत—अनसुना; वस्तुत्वात्—वैसा होने से; सः—वह; जीवः—जीव; यत्—जो; पुनः-भवः—बारम्बार जन्म ग्रहण करता है।

रूप की इस स्थूल अवधारणा से परे रूप की एक अन्य सूक्ष्म धारणा है, जिसका कोई आकार नहीं होता और जो अनदेखा, अनसुना तथा अव्यक्त होता है। जीव का रूप इस सूक्ष्मता से परे है, अन्यथा उसे बारम्बार जन्म न लेना पड़ता।

तात्पर्य : जिस प्रकार इस स्थूल दृश्य जगत का विचार भगवान् के विराट शरीर के रूप में किया जाता है, उसी प्रकार उनके सूक्ष्म शरीर की भी धारणा है जिसे न तो देखा जा सकता है, न सुना या प्रकट किया जा सकता है। लेकिन वस्तुतः शरीर की ये समस्त स्थूल या सूक्ष्म अवधारणाएँ जीवों से सम्बन्धित होती हैं। जीव का अपना आध्यात्मिक रूप होता है, जो इस स्थूल भौतिक या सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक अस्तित्व से परे होता है। ज्योंही जीव इस दृश्य स्थूल शरीर को त्याग देता है, त्योंही स्थूल शरीर तथा मनोवैज्ञानिक क्रियाएं करना बंद कर देती है। वस्तुतः हम कहते हैं कि जीव चला गया, क्योंकि वह न तो दिखता है, न ही सुनाई देता है। यहाँ तक कि जब जीव प्रगाढ़ निद्रा में होता है, तब स्थूल शरीर कार्य नहीं करता होता, तो हम यह जानते हैं कि श्वास लेने के कारण वह शरीर के भीतर है। अतएव जीव के देह से चले जाने (मरने) का यह अर्थ कदापि नहीं होता कि जीवात्मा का अस्तित्व ही नहीं है। वह यहीं होता है, अन्यथा पुनः पुनः जन्म क्यों होता ?

निष्कर्ष यह निकला कि भगवान् अपने दिव्य रूप में नित्य विद्यमान रहते हैं, जो जीव के समान न तो स्थूल है, न सूक्ष्म हैं। उनके शरीर की तुलना कभी भी जीव के स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों से नहीं की जा सकती। ईश्वर के शरीर की ऐसी सारी भवधारणाएँ काल्पनिक हैं। जीव का अपना सनातन आध्यात्मिक रूप होता है, जो उसके भौतिक कल्मष के कारण ही बद्ध रहता है।

यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा ।
अविद्ययात्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

यत्र—जब भी; इमे—इन सबमें; सत्-असत्—स्थूल तथा सूक्ष्म; रूपे—के रूपों में; प्रतिषिद्धे—दूर हो जाने पर; स्व-संविदा—आत्म-साक्षात्कार द्वारा; अविद्यया—अज्ञान से; आत्मनि—आत्मा में; कृते—आरोपित; इति—इस प्रकार; तत्—वह है; ब्रह्म-दर्शनम्—परमेश्वर के दर्शन की विधि।

जब कभी मनुष्य आत्म-साक्षात्कार द्वारा यह अनुभव करता है कि स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों शरीरों का शुद्ध आत्मा से कोई सरोकार नहीं, उस समय वह अपना तथा साथ ही साथ भगवान् का दर्शन करता है।

तात्पर्य : आत्म-साक्षात्कार तथा मोह में यही अन्तर है कि स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों के रूप में भौतिक शक्ति का क्षणिक या भ्रामक आरोपण आत्मा के बाह्य आवरण हैं। ये आवरण अविद्या से जनित हैं। ऐसे आवरण भगवान् के व्यक्तित्व पर कभी प्रभावशाली नहीं होते। इसको भलीभाँति जान लेना ही मुक्ति या परमेश्वर का दर्शन है। इसका अर्थ यह होता है कि ईश-सदृश अर्थात् आध्यात्मिक जीवन अपनाने से पूर्ण आत्म-साक्षात्कार सम्भव हो पाता है। आत्म-साक्षात्कार का अर्थ है, स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर की आवश्यकताओं के प्रति अन्यमनस्क होना और आत्मा के कार्यों के प्रति गम्भीर बनना। कार्यों के लिए प्रेरणा आत्मा से उत्पन्न होती है, किन्तु आत्मा की वास्तविक स्थिति न जानने के कारण ऐसे कार्य भ्रामक बन जाते हैं। अविद्या के कारण अपने हित की गणना स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों को ध्यान में रखकर की जाती है, फलस्वरूप सारे कार्य जन्म-जन्मान्तर के कार्यों का सारा ढाँचा ही बिगड़ जाता है। किन्तु जब कोई मनुष्य समुचित अनुशीलन द्वारा आत्मा से भेंट करता है, तब आत्मा के कार्यों का शुभारम्भ होता है। फलस्वरूप, जो व्यक्ति आत्मा के कार्यों में व्यस्त रहता है, वह बद्ध जीवन में रहता हुआ भी 'जीवन्मुक्त' कहलाता है।

आत्म-साक्षात्कार की यह पूर्ण अवस्था किसी कृत्रिम साधन से नहीं, अपितु निरन्तर दिव्य स्थिति में रहने वाले भगवान् के चरणकमलों का आश्रय ग्रहण करने से प्राप्त की जाती है। भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि वे प्रत्येक जीव के हृदय में विद्यमान हैं और उन्हीं से सारा

ज्ञान, स्मृति या विस्मृति होती है। जब जीव भौतिक शक्ति (मोह) का भोक्ता बनना चाहता है, तो भगवान् उसे विस्मृति के रहस्य से ढक देते हैं और इस प्रकार जीव स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर को ही अपना स्वः मानने का भ्रम पाल लेता है। और जब दिव्य ज्ञान के अनुशीलन द्वारा जीव विस्मृति के पाश से छूटने के लिए भगवान् से प्रार्थना करता है, तो भगवान् अपनी अहैतुकी कृपा से जीव के मोहजनित आवरण को हटा देते हैं और वह स्व की अनुभूति करने लगता है। फिर वह बद्ध जीवन से छूटकर अपनी शाश्वत वैधानिक स्थिति में स्वयं को भगवान् की सेवा में लगा लेता है। यह सब भगवान् की बहिरंगा शक्ति के द्वारा या साक्षात् अन्तरंगा शक्ति के द्वारा सम्पन्न किया जाता है।

यद्येषोपरता देवी माया वैशारदी मतिः ।

सम्पन्न एवेति विदुर्महिम्नि स्वे महीयते ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

यदि—यदि, फिर भी; एषा—वे; उपरता—दमित; देवी माया—माया; वैशारदी—ज्ञान से पूर्ण; मतिः—प्रकाश;
सम्पन्नः—सेवा परिपूर्ण; एव—निश्चय ही; इति—इस प्रकार; विदुः—जानते हुए; महिम्नि—महिमा में; स्वे—अपनी;
महीयते—प्रतिष्ठित।

यदि माया का शमन हो जाता है और यदि भगवत्कृपा से जीव ज्ञान से सम्पन्न हो जाता है, तो उसे तुरन्त आत्म-साक्षात्कार का प्रकाश प्राप्त होता है और वह अपनी महिमा में प्रतिष्ठित (महिमामण्डित) हो जाता है।

तात्पर्य : चूँकि भगवान् परम ब्रह्म हैं, अतएव उनके रूप, नाम, लीलाएँ, गुण, पार्षद तथा शक्तियाँ उनसे अभिन्न हैं। उनकी दिव्य शक्ति उनकी सर्वशक्तिमत्ता के अनुसार कार्य करती है। वही शक्ति उनकी अन्तरंगा, बहिरंगा तथा तटस्था शक्तियों के रूप में कार्य करती है और वे अपनी सर्वशक्तिमत्ता के कारण इन तीनों शक्तियों में से किसी के भी द्वारा कुछ भी कर सकते हैं। वे अपनी इच्छानुसार बहिरंगा शक्ति को अन्तरंगा शक्ति में बदल सकते हैं। इसीलिए भगवत्कृपा से वह बहिरंगा शक्ति जो इसके इच्छुक जीवों को मोहने के काम में प्रयुक्त की जाती है, भगवान् की इच्छा से बद्धजीव के पश्चात्ताप तथा तपस्या के अनुपात में शमित होती है। फिर यही शक्ति शुद्ध

हुए जीव को आत्म-साक्षात्कार के पथ पर अग्रसर होने में सहायक बनती है। इस प्रसंग में विद्युतशक्ति का दृष्टान्त उपयुक्त होगा। निपुण विद्युत कर्मी एक ही विद्युतशक्ति को, केवल समंजन के द्वारा, गरम करने तथा ठंडा करने के लिए काम में ला सकता है। इसी प्रकार बहिरंगा शक्ति, जो जीव को मोहग्रस्त करके जन्म-मृत्यु के चक्र में बारम्बार डालती है, भगवत्कृपा से अन्तरंगा शक्ति में परिणत होकर जीव को शाश्वत जीवन प्रदान करती है। जब जीव पर भगवान् ऐसी कृपा करते हैं, तो वह अपनी उपयुक्त स्वाभाविक स्थिति प्राप्त करके शाश्वत आध्यात्मिक जीवन का आनन्द लेता है।

एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य च ।

वर्णयन्ति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पतेः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; जन्मानि—जन्म; कर्माणि—कर्म; हि—निश्चय ही; अकर्तुः—अकर्ता के; अजनस्य—अजन्मा के; च—तथा; वर्णयन्ति—वर्णन करते हैं; स्म—भूत काल में; कवयः—विद्वान्; वेद-गुह्यानि—वेदों के द्वारा न जाने जा सकने योग्य, गोपनीय; हृत्-पतेः—हृदय के स्वामी के।

इस प्रकार विद्वान् पुरुष उस अजन्मा तथा अकर्ता के जन्मों तथा कर्मों का वर्णन करते हैं, जो वैदिक साहित्य के लिए भी ज्ञेय नहीं हैं। वे हृदयेश हैं।

तात्पर्य : भगवान् तथा जीव दोनों ही मूल रूप से आध्यात्मिक हैं। अतएव दोनों ही शाश्वत हैं और दोनों में से किसी का न तो जन्म होता है, न मृत्यु। अन्तर इतना ही है कि भगवान् के तथाकथित जन्म तथा तिरोधान जीवों से भिन्न होते हैं। जन्म लेकर मरने वाले जीव प्रकृति के नियमों से बँधे हुए हैं, लेकिन भगवान् का तथाकथित प्राकट्य तथा तिरोधान, भौतिक प्रकृति का कर्म न होकर, भगवान् की अन्तरंगा शक्ति का प्रदर्शन है। महान् ऋषि, मुनि इनका वर्णन आत्म-साक्षात्कार के उद्देश्य से करते हैं। *भगवद्गीता* में भगवान् ने कहा है कि भौतिक जगत में उनके तथाकथित जन्म तथा कर्म सब दिव्य हैं। इन कर्मों का ध्यान करने से ही मनुष्य ब्रह्म का साक्षात्कार कर सकता है और भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है। श्रुतियों का कथन है कि अजन्मा भी जन्म लेता प्रतीत होता है। परमेश्वर को कुछ करना नहीं होता, लेकिन चूँकि वे सर्वशक्तिमान

हैं, अतएव हर कार्य सहज ही उनके द्वारा सम्पन्न हो जाता है मानो स्वयमेव सम्पन्न हुआ हो। तथ्य तो यह है कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्राकट्य तथा तिरोधान एवं उनके विविध कर्म—ये सभी वैदिक साहित्य के लिए भी परम गुह्य हैं। तो भी ये सब भगवान् द्वारा बद्धजीवों पर दया प्रदान करने के लिए प्रदर्शित किये जाते हैं। हमें भगवान् के कर्मों के आख्यानों (लीलाओं) से लाभ उठाना चाहिए, क्योंकि ये ब्रह्म का ध्यान करने के अत्यन्त सुगम तथा रुचिकर साधन हैं।

स वा इदं विश्वममोघलीलः

सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ।

भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः

षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

सः—परमेश्वर; वा—अथवा; इदम्—इस; विश्वम्—प्रकट ब्रह्माण्ड को; अमोघ-लीलः—जिनके कर्म निष्कलंक हैं वे; सृजति—उत्पन्न करते हैं; अवति अत्ति—पालन तथा संहार करते हैं; न—नहीं; सज्जते—से प्रभावित होते हैं; अस्मिन्—उनमें; भूतेषु—समस्त जीवों में; च—तथा; अन्तर्हितः—भीतर रहकर; आत्म-तन्त्रः—स्वतन्त्र; षाट्-वर्गिकम्—भगवान् के षड् ऐश्वर्यों से युक्त; जिघ्रति—सुगंधि की तरह ऊपर-ऊपर आसक्त; षट्-गुण-ईशः—छहों इन्द्रियों के स्वामी।

जिनके कर्म सदैव निष्कलुष होते हैं वे भगवान् छह इन्द्रियों के स्वामी हैं और छहों ऐश्वर्यों के साथ सर्वशक्तिमान हैं। वे दृश्य ब्रह्माण्डों की सृष्टि करते हैं, उनका पालन करते हैं और रंचमात्र भी प्रभावित हुए बिना उनका संहार करते हैं। वे समस्त जीवों के भीतर विद्यमान रहते हैं और सदैव स्वतन्त्र होते हैं।

तात्पर्य : भगवान् तथा जीवों के बीच का मुख्य अन्तर यह है कि भगवान् सृष्टा हैं और जीव सृष्ट हैं। यहाँ पर उन्हें *अमोघ-लीलः* कहा गया है, जो इस बात का द्योतक है कि उनके सृजन में कुछ भी शोचनीय नहीं है। जो लोग उनकी सृष्टि में गड़बड़ी उत्पन्न करते हैं, वे स्वयं विचलित होते हैं। वे समस्त भौतिक सन्तापों से परे हैं, क्योंकि वे छहों ऐश्वर्यों अर्थात् धन, शक्ति, यश, सौंदर्य, ज्ञान तथा त्याग—से सम्पन्न हैं। इस प्रकार वे इन्द्रियों के स्वामी हैं। उनके द्वारा इन दृश्य जगत्‌ओं की सृष्टि उन जीवों के उद्धार के लिए की जाती है, जो तीन प्रकार के क्लेशों से ग्रस्त हैं। वे उनका पालन करते हैं और समय आने पर, किसी प्रकार से प्रभावित हुए बिना, उनका संहार

कर देते हैं। वे इस भौतिक सृष्टि से बाह्य रूप से उसी तरह सम्बन्धित हैं, जिस प्रकार किसी सुगन्धयुक्त पदार्थ से सम्बन्धित हुए बिना कोई सुगन्धि का सेवन करता है। अतएव ईशताहीन तत्त्व, समस्त प्रयासों के बावजूद, भगवान् के पास तक नहीं पहुँच पाते।

न चास्य कश्चिन्निपुणेन धातु-
रवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः ।
नामानि रूपाणि मनोवचोभिः
सन्तन्वतो नटचर्यामिवाज्ञः ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; च—तथा; अस्य—भगवान् का; कश्चित्—कोई; निपुणेन—निपुणता से; धातुः—स्रष्टा का; अवैति—जान सकता है; जन्तुः—जीव; कुमनीषः—अज्ञानी; ऊतीः—भगवान् के कार्य; नामानि—उनके नाम; रूपाणि—उनके रूप; मनः—वचोभिः—मानसिक तर्क या वाणी के द्वारा; सन्तन्वतः—व्यक्त करते हुए; नट-चर्याम्—नाटकीय कर्म, करामात; इव—सदृश; अज्ञः—मूर्ख।

मूर्ख मनुष्य अपने अल्प ज्ञान के कारण भगवान् के रूपों, नामों तथा कर्मों की दिव्य प्रकृति को नहीं जान सकते, क्योंकि वे तो किसी नाटक में एक पात्र की तरह कार्य कर रहे होते हैं। न ही ऐसे मनुष्य अपने तर्क या अपनी वाणी द्वारा भी ऐसी बातों को व्यक्त कर सकते हैं।

तात्पर्य : परम सत्य के दिव्य स्वभाव का कोई भी ठीक से वर्णन नहीं कर सकता। इसीलिए कहा जाता है कि वे मन तथा वाणी की अभिव्यक्ति से परे हैं। फिर भी कुछ ऐसे अल्पज्ञ व्यक्ति हैं, जो अपने अपूर्ण तर्कवितर्क तथा परमेश्वर के कार्यों के दोषपूर्ण वर्णन द्वारा परम सत्य को जानना चाहते हैं। एक साधारणतम व्यक्ति के लिए भगवान् के कर्म, प्राकट्य तथा तिरोधान, भगवान् के नाम, रूप, साज-सामान, व्यक्तित्व तथा उनसे सम्बन्धित सारी वस्तुएँ रहस्यमय (गुह्य) होती हैं। भौतिकतावादियों की दो कोटियाँ हैं—एक सकाम कर्मियों की तथा दूसरी मीमांसकों की। सकाम कर्मियों को परम सत्य की तनिक भी जानकारी नहीं होती और मीमांसक सकाम कर्मों से निराश होकर परम सत्य की ओर मुख मोड़ते हैं तथा शुष्क चिन्तन द्वारा उन्हें जानने का प्रयास करते हैं। ऐसे समस्त लोगों के लिए परम सत्य उसी तरह रहस्यमय बने रहते हैं,

जिस प्रकार बच्चों को जादूगर के करतब। परम पुरुष की जादूगरी से छले जाकर अभक्तगण सदैव अज्ञान में पड़े रहते हैं, भले ही वे सकाम कर्म तथा तर्कवितर्क में कितने ही निपुण क्यों न हों। ऐसे सीमित ज्ञान के द्वारा वे अध्यात्म के गुह्य क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर पाते। तर्कवादी सकाम कर्मियों से थोड़े बेहतर होते हैं, लेकिन वे भी मोह के चंगुल में रहने से, यह मान लेते हैं कि जिस वस्तु में कोई रूप, नाम, तथा कर्म हो, वह भौतिक शक्ति से उत्पन्न है। ऐसे लोगों के लिए परमात्मा रूपहीन, नामहीन तथा कर्महीन हैं। और चूँकि ऐसे मीमांसक (ज्ञानी) भगवान् के दिव्य नाम तथा रूप की बराबरी संसारी नामों तथा रूपों से करते हैं, अतः वे सचमुच अज्ञानी हैं। इतने अल्पज्ञान से परम पुरुष की वास्तविक प्रकृति तक नहीं पहुँचा जा सकता। जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है, भगवान् सदैव, यहाँ तक कि भौतिक जगत के भीतर रहते हुए भी दिव्य अवस्था में रहते हैं। लेकिन अज्ञानी व्यक्ति भगवान् को विश्व की एक महान विभूति मानते हैं और इस प्रकार वे माया द्वारा भ्रमित होते रहते हैं।

स वेद धातुः पदवीं परस्य
 दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः ।
 योऽमायया सन्ततयानुवृत्त्या
 भजेत तत्पादसरोजगन्धम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

सः—वे ही; वेद—जान सकते हैं; धातुः—स्रष्टा की; पदवीम्—महिमा को; परस्य—अध्यात्म का; दुरन्त-वीर्यस्य—अत्यन्त शक्तिशाली का; रथ-अङ्ग-पाणेः—भगवान् कृष्ण का, जो हाथ में रथ का चक्र धारण करते हैं; यः—जो; अमायया—किसी हिचक के बिना; सन्ततया—निरन्तर; अनुवृत्त्या—अनुकूल होकर; भजेत—सेवा करता है; तत्-पाद—उनके चरणों की; सरोज-गन्धम्—कमल की महक।

जो बिना हिचक के अबाध रूप से अपने हाथों में रथ का चक्र धारण करने वाले भगवान् के चरणकमलों की अनुकूल सेवा करता है, वही इस जगत के स्रष्टा की पूर्ण महिमा, शक्ति तथा दिव्यता को समझ सकता है।

तात्पर्य : केवल शुद्ध भक्त ही सकाम कर्मों एवं मानसिक तर्क के फलों से मुक्त होने के कारण, भगवान् कृष्ण के दिव्य नाम, रूप तथा उनकी लीलाओं को समझ पाते हैं। इन शुद्ध भक्तों

को भगवान् की अनन्य भक्ति से कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं प्राप्त करना होता। वे बिना हिचक के भगवान् की अनन्य सेवा करते हैं। इस सृष्टि में प्रत्येक प्राणी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भगवान् की सेवा कर रहा है। भगवान् के इस नियम से कोई छूटा नहीं है। जो लोग भगवान् के भ्रामक प्रतिनिधि द्वारा बाध्य होकर भगवान् की अप्रत्यक्ष रूप से सेवा कर रहे हैं, वे भगवान् की प्रतिकूल ढंग से सेवा करते हैं। किन्तु जो उनके प्रिय प्रतिनिधि के निर्देशन में प्रत्यक्ष सेवा करते हैं, वे उनकी अनुकूल सेवा करते हैं। ऐसे अनुकूल सेवक भगवद्भक्त ही होते हैं और वे भगवत्कृपा से अध्यात्म के गुह्य क्षेत्र में प्रवेश कर पाते हैं। लेकिन मनोधर्मी सदा अंधकार में ही पड़े रहते हैं। जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है, भगवान् स्वयं शुद्ध भक्तों को उनकी निरन्तर प्रेमाभक्ति के कारण साक्षात्कार के मार्ग की ओर ले जाते हैं। भगवान् के धाम में प्रवेश पाने का यही रहस्य है। वहाँ प्रवेश पाने के लिए सकाम कर्म तथा तर्कवितर्क की कोई योग्यताएँ नहीं हैं।

अथेह धन्या भगवन्त इत्थं
 यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे ।
 कुर्वन्ति सर्वात्मकमात्मभावं
 न यत्र भूयः परिवर्त उग्रः ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

अथ—इस प्रकार; इह—इस संसार में; धन्याः—सफल; भगवन्तः—पूर्ण रूप से ज्ञात; इत्थम्—ऐसा; यत्—जो; वासुदेवे—भगवान् के प्रति; अखिल—सम्पूर्ण; लोक—नाथे—समस्त ब्रह्माण्डों के स्वामी के प्रति; कुर्वन्ति—प्रेरित करते हैं; सर्व—आत्मकम्—शत प्रतिशत; आत्म—आत्मा; भावम्—आह्लाद; न—कभी नहीं; यत्र—जहाँ; भूयः—फिर; परिवर्तः—पुनरावृत्ति; उग्रः—भयानक।

इस संसार में केवल ऐसी जिज्ञासाओं द्वारा ही मनुष्य सफल तथा पूर्णतः ज्ञात हो सकता है, क्योंकि ऐसी जिज्ञासाओं से अखिल ब्रह्माण्डों के स्वामी भगवान् के प्रति दिव्य आह्लादकारी प्रेम उत्पन्न होता है और जन्म-मृत्यु की घोर पुनरावृत्ति से शत प्रतिशत प्रतिरक्षा की गारंटी प्राप्त होती है।

तात्पर्य : यहाँ पर सूत गोस्वामी द्वारा शौनक आदि मुनियों की जिज्ञासाओं की प्रशंसा उनकी दिव्य प्रकृति के आधार पर की गई है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, केवल भगवद्भक्त ही

उनको एक समुचित सीमा में जान पाते हैं, अन्य कोई नहीं जान पाता, अतएव भक्तगण समस्त आध्यात्मिक ज्ञान से पूर्ण रूप से ज्ञात होते हैं। परम सत्य का अन्तिम पड़ाव भगवान् ही हैं। निराकार ब्रह्म तथा अन्तर्यामी परमात्मा भगवान् के ज्ञान में सम्मिलित हैं। अतः जो भगवान् को जान सकता है, वह उनके विषय में, उनकी नाना शक्तियों तथा उनके अंशों के विषय में स्वतः ही सब कुछ जान लेता है। अतएव भक्तों को परम भाग्यशाली (सफल) कहा गया है। भगवान् का शतप्रतिशत भक्त जन्म-मरण के चक्र के भयानक भौतिक तापों के प्रति निश्चेष्ट रहता है।

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसम्मितम् ।

उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः ।

निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

इदम्—इस; भागवतम्—भगवान् तथा उनके शुद्ध भक्तों की कथा वाले ग्रन्थ को; नाम—नामक; पुराणम्—वेदों के अनूपूरक; ब्रह्म-सम्मितम्—भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार; उत्तम-श्लोक—भगवान् का; चरितम्—कार्यकलाप; चकार—संकलित किया; भगवान्—भगवान् के अवतार; ऋषिः—श्री व्यासदेव ने; निःश्रेयसाय—परम कल्याण के लिए; लोकस्य—सब लोगों के; धन्यम्—पूर्ण रूप से सफल, धन्य; स्वस्ति-अयनम्—सर्व आनन्दमय; महत्—परिपूर्ण।

यह श्रीमद्भागवत भगवान् का साहित्यावतार है, जिसे भगवान् के अवतार वेदव्यास ने संकलित किया है। यह सभी लोगों के परम कल्याण के निमित्त है और यह सभी तरह से सफल, आनन्दमय तथा परिपूर्ण है।

तात्पर्य : भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने घोषित किया है कि श्रीमद्भागवत समस्त वैदिक ज्ञान तथा इतिहास की निर्मल वाणी है। इसमें भगवान् के संसर्ग में रहने वाले कतिपय महान भक्तों के चुने हुए चरित्र दिये गये हैं। श्रीमद्भागवत भगवान् कृष्ण का साहित्यावतार है, अतएव यह उनसे अभिन्न है। हमें श्रीमद्भागवत की पूजा उसी सम्मान से करनी चाहिए, जिस तरह हम भगवान् की करते हैं। हम इसके सचेष्ट एवं धीर अध्ययन के द्वारा भगवान् का परम आशीर्वाद प्राप्त कर सकते हैं। जिस प्रकार भगवान् पूर्ण प्रकाश, पूर्ण आनन्द तथा सर्वथा पूर्ण हैं, उसी तरह यह श्रीमद्भागवत भी है। हमें श्रीमद्भागवत का पाठ करने से परब्रह्म श्रीकृष्ण का सारा दिव्य प्रकाश प्राप्त हो सकता है, बशर्ते कि हम इसे पारदर्शी गुरु के माध्यम से ग्रहण करें। पुरी में

भगवान् चैतन्य के दर्शनार्थ जितने लोग आते थे उनसे महाप्रभु के निजी सचिव श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी यही कहा करते थे कि किसी भक्त-भागवत से ही भागवत का अध्ययन करना चाहिए। भक्त-भागवत स्वरूपसिद्ध प्रामाणिक गुरु हैं और वांछित फल प्राप्त करने के लिए उन्हीं से भागवत की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। भागवत के अध्ययन से वे सारे लाभ प्राप्त हो सकते हैं, जो भगवान् की साक्षात् उपस्थिति से होते हैं। यह भगवान् कृष्ण के उन समस्त आशीर्वादों को प्रदान करने वाला है, जो भगवान् के साक्षात् सम्पर्क से मिल सकते हैं।

तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ।

सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

तत्—उस; इदम्—यह; ग्राहयाम् आस—स्वीकार कराया; सुतम्—उनके पुत्र को; आत्मवताम्—स्वरूपसिद्ध को; वरम्—अत्यन्त आदरणीय; सर्व—समस्त; वेद—वैदिक साहित्य (ज्ञान ग्रन्थ); इतिहासानाम्—समस्त इतिहासों का; सारम्—सार, निष्कर्ष; सारम्—सार; समुद्धृतम्—निकाला हुआ।

स्वरूपसिद्धों में अत्यन्त सम्माननीय श्री व्यासदेव ने समस्त वैदिक वाङ्मय तथा ब्रह्माण्ड के इतिहासों का सार निकाल कर इसे अपने पुत्र को प्रदान किया।

तात्पर्य : अल्पज्ञ लोग संसार के इतिहास को केवल बुद्ध के समय से अर्थात् ६०० ई.पू. से मानते हैं, और इस काल के पूर्व शास्त्रों में उल्लिखित सारे इतिहासों को वे मात्र काल्पनिक कथाएँ मानते हैं। यह तथ्य नहीं है। पुराणों में तथा महाभारत आदि में वर्णित सारी कथाएँ वास्तविक इतिहास हैं, जो न केवल इस लोक से अपितु इस ब्रह्माण्ड के लाखों अन्य लोकों से सम्बन्धित हैं। ऐसे लोगों को कभी-कभी इस जगत से परे अन्य लोकों का इतिहास अविश्वसनीय जान पड़ता है। लेकिन शायद वे यह जानते नहीं हैं कि विभिन्न ग्रह सभी प्रकार से एकसमान नहीं हैं, अतएव अन्य ग्रहों के कुछ ऐतिहासिक तथ्य इस ग्रह के तथ्यों से मेल नहीं खाते। विभिन्न लोकों की भिन्न-भिन्न स्थिति तथा काल एवं परिस्थितियों पर विचार करने पर पुराणों की कहानियों में न तो कोई विचित्रता दिखेगी, न ही वे काल्पनिक लगेंगी। हमें यह कहावत सदैव स्मरण में रखनी चाहिए कि एक व्यक्ति का भोजन किसी दूसरे का काल-कवल बन सकता है। अतएव हमें

चाहिए कि पुराणों की कहानियों तथा इतिहासों को काल्पनिक कह कर उनका तिरस्कार न करें। व्यास जैसे महर्षियों को अपने साहित्य में काल्पनिक कथाएँ रखने से क्या मिलने वाला था ?

श्रीमद्भागवत में विभिन्न लोकों के इतिहासों से चुने हुए ऐतिहासिक तथ्यों का चित्रण किया गया है। इसीलिए समस्त अध्यात्मवादी इसे महापुराण के रूप में स्वीकार करते हैं। इन इतिहासों की विशिष्टता यह है कि ये सब विभिन्न कालों तथा परिवेशों में भगवान् की लीलाओं से सम्बद्ध हैं। श्रील शुकदेव गोस्वामी स्वरूपसिद्ध व्यक्तियों में सर्वोपरि हैं और उन्होंने अपने पिता व्यासदेव से इस विषय को ग्रहण किया। श्रील व्यासदेव परम विद्वान् हैं। उन्होंने *श्रीमद्भागवत* की विषय वस्तु को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझ कर सर्वप्रथम अपने महान पुत्र श्रील शुकदेव गोस्वामी को प्रदान किया। इसकी तुलना दूध की मलाई से की गई है। वैदिक वाङ्मय मानो ज्ञान का क्षीर सागर हो। जिस प्रकार नवनीत दुग्ध का सर्वाधिक स्वादिष्ट तत्त्व होता है, उसी तरह यह *श्रीमद्भागवत* भी है, क्योंकि इसमें भगवान् तथा उनके भक्तों के कार्यकलापों के अत्यन्त सुस्वादु, उपदेशात्मक तथा प्रामाणिक विवरण मिलते हैं। किन्तु यदि नास्तिकों तथा व्यवसायी वाचकों से *भागवत* सुनी जाय, जो जनसामान्य के लिए *भागवत* का व्यापार करते हैं, तो उससे कोई लाभ नहीं होता। श्रील शुकदेव गोस्वामी को *भागवत* इसीलिए प्रदान की गयी थी, क्योंकि उन्हें *भागवत* का व्यवसाय नहीं करना था। उन्हें इस व्यापार से परिवार का भरण-पोषण नहीं करना था। इसलिए *श्रीमद्भागवत* को शुकदेव के ऐसे प्रतिनिधि से ग्रहण करना चाहिए, जो संन्यास आश्रम में हो और जिस पर परिवार का बोझ न हो। दूध सचमुच उत्तम एवं पोषक होता है, किन्तु जब कोई सर्प मुँह से इसका स्पर्श कर देता है तो यह पोषक नहीं रह जाता, उल्टे यह मृत्यु का कारण बन जाता है। इसी तरह, जो लोग दृढता से वैष्णव परम्परा में नहीं लगे हैं, उन्हें न तो *भागवत* का व्यापार करना चाहिए और न अनेकानेक श्रोताओं की आध्यात्मिक मृत्यु का कारण बनना चाहिए। *भगवद्गीता* में भगवान् कहते हैं कि समस्त वेदों का उद्देश्य उन्हें (कृष्ण को) जानना है और *श्रीमद्भागवत* तो संचित ज्ञान-रूप साक्षात् श्रीकृष्ण है। अतः यह समस्त वेदों का नवनीत (सार)

है और इसमें श्रीकृष्ण से सम्बन्धित समस्त कालों के ऐतिहासिक तथ्य भरे हैं। वस्तुतः यह समस्त इतिहासों का सार है।

स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ।
प्रायोपविष्टं गङ्गायां परीतं परमर्षिभिः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

सः—व्यासदेव के पुत्र ने; तु—पुनः; संश्रावयाम् आस—सुनाया; महा-राजम्—राजा; परीक्षितम्—परीक्षित को; प्राय-उपविष्टम्—अन्न-जल रहित मृत्यु के लिए बैठे; गङ्गायाम्—गंगा नदी के तट पर; परीतम्—घिरे हुए; परम-ऋषिभिः—बड़े-बड़े ऋषियों द्वारा।

व्यासदेव के पुत्र शुकदेव गोस्वामी ने, अपनी पारी में महाराज परीक्षित को भागवत सुनाई जो तब निर्जल तथा निराहार रहकर मृत्यु की प्रतीक्षा करते हुए गंगा नदी के तट पर ऋषियों से घिरे बैठे हुए थे।

तात्पर्य : सारे दिव्य सन्देश शिष्य परंपरा की शृंखला से उचित ढंग से प्राप्त किये जाते हैं। यह शिष्य-शृंखला परम्परा कहलाती है। जब तक भागवत को या अन्य किसी वैदिक ग्रंथ को परम्परा-पद्धति से ग्रहण नहीं किया जाता है, तब तक उसे प्रामाणिक नहीं माना जाता। व्यासदेव ने यह सन्देश शुकदेव गोस्वामी को प्रदान किया और शुकदेव गोस्वामी से इसे सूत गोस्वामी ने प्राप्त किया। अतः भागवत का सन्देश सूत गोस्वामी या उनके प्रतिनिधि से ही प्राप्त करना चाहिए, किसी अप्रासंगिक व्याख्याकार से नहीं।

महाराज परीक्षित को अपनी मृत्यु की सूचना समय से प्राप्त हो गई थी, अतः उन्होंने अपना राज्य तथा परिवार छोड़ दिया और आमरण उपवास करते हुए वे गंगा के किनारे जा बैठे। उनकी राजसी स्थिति के कारण सारे ऋषि, मुनि, चिन्तक, योगी आदि वहाँ पहुँच गये। उन सबों ने उन्हें उनके तात्कालिक कर्तव्य के बारे में कई सुझाव दिये और अन्त में यह तय हुआ कि वे शुकदेव गोस्वामी से भगवान् कृष्ण के विषय में सुनें। इस प्रकार उन्हें भागवत की कथा सुनायी गयी।

मायावादी दर्शन के उपदेशक तथा परब्रह्म के निर्गुण रूप के समर्थक श्रीपाद शंकराचार्य ने भी संस्तुति की है कि मनुष्य को भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए;

क्योंकि वाद-विवाद करने से किसी लाभ की आशा नहीं है। उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप में यह स्वीकार किया कि वेदान्त-सूत्र की उन्होंने जो अलंकारमयी वैयाकरणिक व्याख्या की है, उससे मृत्यु के समय कोई सहायता नहीं मिल सकती। आसन्न मृत्यु के निर्णायक समय पर मनुष्य को गोविन्द नाम का जप करना चाहिए। यही सभी बड़े-बड़े अध्यात्मवादियों का कहना है। बहुत काल पूर्व शुकदेव गोस्वामी ने इस सत्य का कथन किया कि अन्त समय में मनुष्य को नारायण का स्मरण करना चाहिए। यही समस्त आध्यात्मिक कार्यों का सार है। इसी शाश्वत सत्य के पालन हेतु महाराज परीक्षित ने श्रीमद्भागवत सुना और सुयोग्य शुकदेव गोस्वामी ने उन्हें इसे सुनाया। भागवत सन्देश के वक्ता तथा श्रोता दोनों ही एक ही माध्यम से मुक्ति पा गए।

कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ।

कलौ नष्टदशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

कृष्णे—कृष्ण के; स्व-धाम—अपने धाम; उपगते—वापस जाने पर; धर्म—धर्म; ज्ञान—ज्ञान; आदिभिः—इत्यादि; सह—साथ; कलौ—कलियुग में; नष्ट-दशाम्—जिन लोगों के दृष्टि नष्ट हो चुकी है उनके; एषः—ये सब; पुराण-अर्कः—सूर्य के समान प्रकाशमान पुराण; अधुना—इस समय; उदितः—उदय हुआ है।

यह भागवत पुराण सूर्य के समान तेजस्वी है और धर्म, ज्ञान आदि के साथ कृष्ण द्वारा अपने धाम चले जाने के बाद ही इसका उदय हुआ। जिन लोगों ने कलियुग में अज्ञान के गहन अन्धकार के कारण अपनी दृष्टि खो दी है, उन्हें इस पुराण से प्रकाश प्राप्त होगा।

तात्पर्य : भगवान् श्रीकृष्ण का अपना शाश्वत धाम है, जहाँ वे, अपने पार्षदों तथा साज-सामग्री के साथ नित्य भोग करते रहते हैं। उनका नित्य धाम उनकी अन्तरंगा शक्ति की अभिव्यक्ति है, जबकि भौतिक संसार उनकी बहिरंगा शक्ति की अभिव्यक्ति है। जब वे भौतिक जगत में आते हैं, तो वे अपनी अन्तरंगा शक्ति में सम्पूर्ण साज-सामग्री का प्रदर्शन करते हैं, जिसे आत्म-माया कहते हैं। भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि वे अपनी शक्ति (आत्म-माया) द्वारा नीचे उतरते हैं। अतः उनका रूप, नाम, यश, साज-सामग्री, धाम आदि भौतिक सृजन नहीं हैं। वे पतित जीवों के उद्धार हेतु तथा धर्म के सिद्धान्तों की स्थापना के लिए अवतरित होते हैं जिनका वे स्वयं प्रदर्शन करते हैं। ईश्वर के अतिरिक्त कोई भी धर्म के सिद्धान्तों की स्थापना नहीं कर सकता। या

तो वे, या उनके द्वारा शक्ति-संचारित किया गया सुयोग्य व्यक्ति ही धर्म की संहिता का नियमन कर सकता है। वास्तविक धर्म का अर्थ है ईश्वर को जानना, ईश्वर के साथ अपने सम्बन्ध को तथा उनके प्रति अपने कर्तव्य को जानना और जब यह भौतिक शरीर छूटे, तो अपने अन्तिम गन्तव्य को जान लेना। माया के पाश में बँधे बद्धजीव बड़ी मुश्किल से जीवन के इन सिद्धान्तों को जान पाते हैं। उनमें से अधिकांश पशुओं की तरह खाने, सोने, अपनी रक्षा तथा मैथुन में लगे रहते हैं। वे अधिकांशतया धार्मिकता, ज्ञान या मोक्ष के नाम पर इन्द्रिय-भोग में लगे रहते हैं। इस कलह-प्रधान कलियुग में तो वे और भी अंधे बन चुके हैं। कलियुग में सारी जनता पशुओं का राजसी संस्करण बनी हुई है। उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान या दैवी धार्मिक जीवन से कोई सरोकार नहीं। वे इतने अंधे हैं कि उन्हें सूक्ष्म मन, बुद्धि या अहंकार के आगे कुछ भी नहीं दिखता, लेकिन वे ज्ञान, विज्ञान तथा भौतिक सम्पन्नता में प्रगति के प्रति अत्यन्त गर्व का अनुभव करते हैं। वे इस शरीर को त्यागने के बाद कूकर या शूकर बनने के लिए भी तैयार हैं, क्योंकि उन्होंने जीवन के चरम लक्ष्य को दृष्टि से ओझल कर रखा है। भगवान् श्रीकृष्ण कलियुग का प्रारम्भ होने से कुछ काल पूर्व हमारे समक्ष प्रकट हुए थे और कलियुग के प्रारम्भ होते ही वे अपने दिव्य धाम को वापस चले गये। जब तक वे उपस्थित थे, उन्होंने अपने कार्यकलापों से सब कुछ कर दिखलाया। उन्होंने विशेष रूप से *भगवद्गीता* का प्रवचन किया और धर्म के सारे बनावटी नियमों का निर्मूलन किया। इस भौतिक जगत से अपने प्रयाण के पूर्व उन्होंने नारद के माध्यम से श्री व्यासदेव को *श्रीमद्भागवत* का संदेश संकलित करने का अधिकार प्रदान किया। इस प्रकार *भगवद्गीता* तथा *श्रीमद्भागवत*, ये दोनों ग्रन्थ इस युग के अंधे लोगों के लिए प्रकाश-स्तम्भ की भाँति हैं। दूसरे शब्दों में, यदि इस कलियुग के लोग जीवन के वास्तविक आलोक को देखना चाहते हैं, तो उन्हें इन दोनों ग्रंथों की शरण लेनी चाहिए। इससे उनका जीवन-लक्ष्य पूरा हो सकेगा। *भगवद्गीता* *भागवत* का प्रारम्भिक अध्ययन है। *श्रीमद्भागवत* तो जीवन का आश्रय तत्त्व, साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण है। अतएव हमें चाहिए कि *श्रीमद्भागवत* को भगवान् श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व

करता हुआ मानें। जो *श्रीमद्भागवत* को देख सकता है, वह साक्षात् श्रीकृष्ण को देख सकता है।
वे अभिन्न हैं।

तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेभूरितेजसः ।

अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात् ।

सोऽहं वः श्रावयिष्यामि यथाधीतं यथामति ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; कीर्तयतः—कीर्तन करते हुए; विप्राः—हे ब्राह्मणों; विप्र-ऋषेः—ब्रह्मर्षि से; भूरि—अत्यधिक; तेजसः—शक्तिशाली; अहम्—मैं; च—भी; अध्यगमम्—समझ सकता हूँ; तत्र—उस सभा में; निविष्टः—पूर्ण रूप से एकाग्रचित्त होकर; तत्—अनुग्रहात्—उसकी कृपा से; सः—वही वस्तु; अहम्—मैं; वः—तुमको; श्रावयिष्यामि—सुनाऊँगा; यथा-अधीतम् यथा-मति—अपने अनुभव के आधार पर।

हे विद्वान् ब्राह्मणों, जब शुकदेव गोस्वामी ने वहाँ पर (महाराज परीक्षित की उपस्थिति में) भागवत सुनाया, तो मैंने अत्यन्त ध्यानपूर्वक सुना और इस तरह उनकी कृपा से मैंने उन महान शक्ति-सम्पन्न ऋषि से भागवत सीखा। अब मैं तुम लोगों को वही सब सुनाने का प्रयत्न करूँगा, जो मैंने उनसे सीखा तथा जैसा मैंने आत्मसात् किया।

तात्पर्य : यदि किसी ने शुकदेव गोस्वामी जैसे स्वरूपसिद्ध महात्मा से *भागवत* सुना है, तो उसे *भागवत* के पृष्ठों में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन हो सकते हैं। लेकिन यदि कोई चाहे कि वह किसी ऐसे व्यर्थ के, किराये के कथावाचक से *भागवत* सीख सकेगा, जिसके जीवन का उद्देश्य ऐसे कथावाचन से कुछ धन कमाकर उसे विषय-भोग में लगाना है, तो वैसा सम्भव नहीं है। जो व्यक्ति कामभोग में लगे हुए मनुष्यों का संग करता है, वह श्रीमद्भागवत सीख नहीं सकता है। *भागवत* के समझने का यही रहस्य है। न ही ऐसे व्यक्ति से *भागवत* समझा जा सकता है, जो अपने संसारी पाण्डित्य से *भागवत* की व्याख्या करता हो। यदि कोई *भागवत* के पृष्ठों में श्रीकृष्ण का दर्शन करना चाहता है, तो उसे शुकदेव गोस्वामी के किसी प्रतिनिधि से ही *भागवत* समझना होगा, अन्य किसी से नहीं। यही एकमात्र विधि है तथा इसका कोई और विकल्प नहीं है। सूत गोस्वामी शुकदेव गोस्वामी के प्रामाणिक प्रतिनिधि हैं, क्योंकि वे उस सन्देश को प्रस्तुत करना चाहते हैं जिसे उन्होंने विद्वान् ब्राह्मण से प्राप्त किया था। शुकदेव गोस्वामी ने *भागवत* को

उसी रूप में प्रस्तुत किया, जिस रूप में उन्होंने अपने महान पिता से सुना था। उसी तरह सूत गोस्वामी भी *भागवत* को उसी रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं, जिस रूप में उन्होंने शुकदेव गोस्वामी से सुना था। केवल सुनना ही काफी नहीं, मनुष्य को चाहिए कि ध्यानपूर्वक मूल तत्त्व को आत्मसात् करे। *निविष्ट* शब्द बताता है कि सूत गोस्वामी ने *भागवत* के रस को अपने कानों से पिया। *भागवत* को ग्रहण करने की वास्तविक विधि यही है। मनुष्य को चाहिए कि वास्तविक व्यक्ति से अत्यन्त सावधानी से सुने; तभी उसे हर पृष्ठ में भगवान् कृष्ण की उपस्थिति की अनुभूति हो सकती है। यहाँ पर *भागवत* को ग्रहण करने के रहस्य का उल्लेख किया गया है। जिसका मन शुद्ध नहीं है, वह सावधानी से नहीं सुन सकता। जो कर्म में शुद्ध नहीं है, उसका मन शुद्ध नहीं हो सकता। जो आहार, शयन, रक्षा तथा मैथुन में शुद्ध नहीं है, वह कर्म में भी शुद्ध नहीं होगा। लेकिन, यदि कोई सही व्यक्ति से ध्यानपूर्वक सुनता है, तो *भागवत* के प्रारम्भिक पृष्ठों में ही उसे भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन अवश्य ही हो सकते हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध के अन्तर्गत “समस्त अवतारों के स्रोत : कृष्ण” नामक तृतीय अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।